राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक–डॉ. पद्मधर पाठक
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क १६६

श्रीमाधवभट्ट विरचिता

सूरसिंहवंशप्रशस्तिः

(राष्ट्रकूट-वंशावली)

सम्पादक

ओ३म्प्रकाश शर्मा

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

1991

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक-डॉ. पद्मधर पाठक
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क १६६

श्रीमाधवभट्ट विरचिता

सूरसिंहवंशप्रशस्तिः

(राष्ट्रकूट-वंशावली)

सम्पादक
ओ३म्प्रकाश शर्मा

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

1991

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यत: अखिल भारतीय तथा विशेषत: राजस्थान-प्रदेशीय पुरातन-
कालीन संस्कृत, प्राकृत्, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषा
निबद्ध विविध वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान-सम्पादक

डॉ. पद्मधर पाठक

निदेशक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर

ग्रन्थाङ्क १६६

श्रीमाधवभट्ट विरचित

सूरसिंहवंशप्रशस्ति:

(राष्ट्रकूट-वंशावली)

सम्पादक

ओ३म्प्रकाश शर्मा

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राज.)

❀ मुद्रक—कमल प्रिण्टर्स, जोधपुर

1981

प्रथमावृत्ति : 250

मूल्य : 10-00

प्रधान-सम्पादकीय

संस्कृत-काव्यों की परम्परा में कुछ काव्य इस प्रकार के हैं जिन्हें ऐतिहासिक-काव्य कहा जाता है—चूँकि वह राजा-महाराजा के शासनकाल से सम्बन्धित होता है—इसलिये वह ऐतिहासिक बन जाता है—परन्तु प्रायः उसका उद्देश्य अपने आश्रयदाता की प्रशंसा या महिमा का वर्णन करना होता है—इसलिये वह अतिशयोक्ति और कल्पनाओं से घिर जाता है—फलतः उसमें ऐतिह्य कम रहता है—उसकी घटनाओं को समकालीन प्रमाण मिलने तक सत्य मानने में अनेक बाधाएँ रहती है।

प्रायः हर रियासत में कवि और कलाकार नियुक्त होते रहे हैं—इसलिये हर राज्य से सम्बन्धित, उसके शासकों का गुणगान करने वाले काव्य भी उपलब्ध हुए हैं—जहाँ तक मारवाड़ में राज्याश्रय में लिखे गये संस्कृत काव्यों अथवा महाकाव्यों की परम्परा का सम्बन्ध है, महाराजा अजीतसिंह (1707-24) के काल में जगजीवन भट्ट के द्वारा रचे गये—अजीतोदय महाकाव्य से ही मारवाड़ की संस्कृत काव्यों की परम्परा का होना स्वीकार किया जाता रहा है।

परन्तु राठौड़-शासक राजा सूरसिंह (1595-1619) के काल के किसी माधव भट्ट नामक कवि के द्वारा लिखा गया सूरसिंह वंश प्रशस्ति काव्य उपलब्ध हो जाने से मारवाड़ की संस्कृत काव्यों की परम्परा की पूर्ववर्ती सीमा अनुमानतः 100 वर्ष अधिक प्राचीन हो जाती है। माधव भट्ट के द्वारा लिखी गयी यह सूरसिंह वंश प्रशस्ति—एक लघुकाव्य है—कवि ने चार खण्डों के स्थान पर इसे चार सर्गों में विभाजित किया है—प्रारम्भिक दो सर्गों में राठौड़ों की पौराणिक वंशावली के नाम गिनाने के पश्चात्—राष्ट्रकूटों की जोधपुर शाखा के सूरसिंह के पूर्वकालीन शासकों की कुछ घटनाओं का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन कर कवि चौथे सर्ग में सूरसिंह से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करना प्रारम्भ कर देता है—इनमें दक्षिण-भारत के कुछ प्रदेशों पर मुगल आधिपत्य स्थापित करने की सूरसिंह की सफलता प्रमुख है।

इतिहास को दृष्टि से इस पुस्तक की उपादेयता चर्चा का विषय हो सकती है परन्तु मारवाड़ के राष्ट्रकूट-शासकों से सम्बन्धित उपलब्ध होने वाले संस्कृत-अभिलेख की दृष्टि से यह काव्य अपने आपमें महत्वपूर्ण है।

प्रतिष्ठान की वार्षिकी "प्रतिष्ठान पत्रिका" में इस काव्य को प्रकाशित किया था, उसे पुस्तक के रूप में विद्वानों के हाथों सौंपते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। मे. कमल प्रिण्टर्स ने अपनी व्यस्तता के बावजूद इस पुस्तक के मुद्रण को अस्त-व्यस्त नहीं होने दिया—इसलिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

—पद्मधर पाठक
निदेशक



Raja Suraj Singh　　　　Bishndas fec. 1608

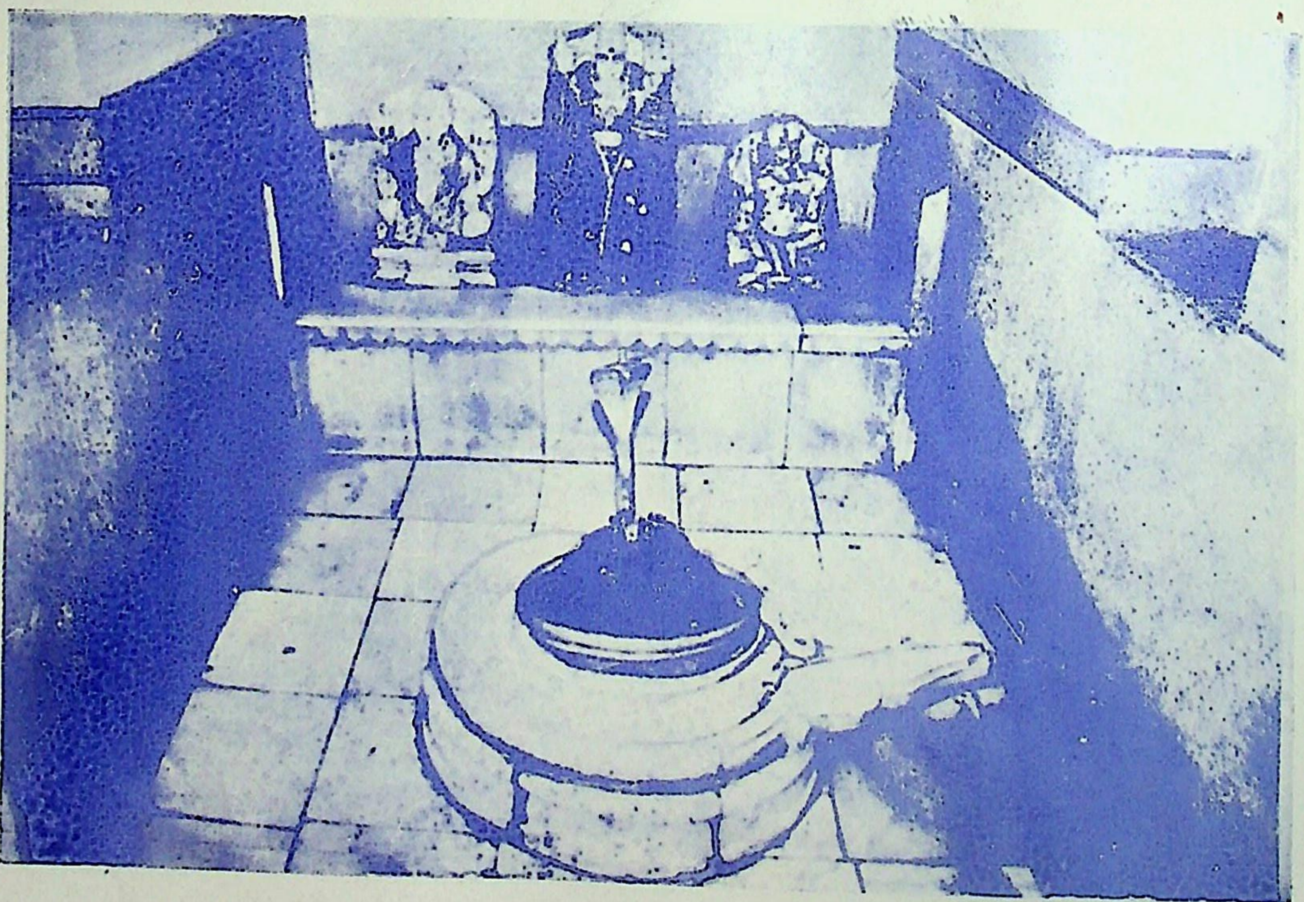
Raja Sur Singh alias Suraj Singh Rathod
(1570–1619 A.D.)

Portrait of Raja Suraj Singh, elder brother of Khurram's (Shahjahan) mother, made by Bishandas in the year 1017 H. (A.D. 1608)

[Reproduced from 'Indian Book Painting' by Kuhnel & Goetz, London, 1926.]



ग्रंथकर्ता श्री माधवभट्ट का निवास
(सम्पर्क सूत्र पं. भँवरलाल भट्ट, ब्रह्मपुरी, भागीपोल, जोधपुर)



माधवभट्ट द्वारा निर्मित माधवेश्वर मन्दिर, (सम्पर्क सूत्र पं. भंवरलाल भट्ट, ब्रह्मपुरी, भागीपोल, जोधपुर)



तुलादान का चबूतरा, (सम्पर्क सूत्र पं. भंवरलाल भट्ट, ब्रह्मपुरी, भागीपोल, जोधपुर)

माधवभट्टविरचिता

सूरसिंहवंशप्रशस्तिः

(राष्ट्रकूट-वंशावली)

इतिहास लेखन की परम्परा चाहे वह मुगल-दरबार के पर्शियन इतिहासकारों की है, राज्याश्रित चारण भाट कवियों की है, अथवा रसगुणादि अलंकृत देववाणी में मानवीय व्यक्तित्व के इतिवृत्त के विवरण का क्रमिक-अक्रमिक; युक्त-अयुक्त गुम्फन किया गया हो, वह भाषागत लालित्यमय वर्णन की मोहकता से, निजाश्रयदाता के गुणों, चाहे वे उनमें रहे हों अथवा न रहे हों, की अतिशयोक्त या मुक्तकंठ प्रशंसा से, शत्रुपक्ष के अवास्तव दौर्बल्यप्रदर्शन से या अन्यान्य अनावश्यक प्रसंगों के चित्र-विचित्र ग्रथन से मुक्त होकर सामने नहीं आ पायी है।

महाभारत और रामायण का निरूपण ऐतिहासिक कोटि का है। लेकिन विषयवस्तु को अन्यान्य प्रकार से ऐसा भ्रमित किया गया है कि उसका इतिहासपरिशीलन स्वतन्त्र शोध का विषय है। महाकवि कालिदास के रघुवंश का विषय ऐतिहासिक है, उसका प्रतिपादन काव्य की तरह हुआ। हां, हरिषेण-प्रशस्ति को प्रारम्भिक शुद्ध ऐतिहासिक काव्य माना जा सकता है। कल्हण की राजतरंगिणी से लेकर अधुनातन इन्दिराचरित-महाकाव्य तक की ऐतिहासिक काव्यों की लम्बी सूची को यहां प्रस्तुत करना उतना आवश्यक नहीं जितना उनमें प्राप्त इतिहास के संशोधन का है।

आलोच्य "सूरसिंहवंशप्रशस्ति" उपर्युक्त परम्परा में होते हुए भी प्रतिपाद्य के आधार पर उन अतिशयोक्तिपूर्ण काव्यों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता जिसने पूर्ववर्त्ती काव्यपुष्पों की एक माला का रूप ले लिया है।

हिन्दी-राजस्थानी अथवा डिंगल काव्यों अथवा चारणों की विरुदावली की तरह कवि का प्रारम्भिक उद्देश्य राठौड़ों की वंशावली को संस्कृत-श्लोकों में निरूपण करना रहा है। सूरसिंह का वर्णन काव्य के अन्तिम भाग में है। मातृभूमि की रक्षा के लिये प्राणों की बाजी लगा देने वाले युद्धों का वर्णन इसकी विशेषता नहीं है, रम्य-प्रकृति-चित्रण में कवि की लेखनी उतनी प्रवाहमय नहीं हो पाई है। वंशावली और सूरसिंह के कतिपय प्रसंगों का काव्यमय वर्णन ही कवि के प्रतिपाद्य की सीमा है। राजस्थान के ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा में इसका स्थान व महत्त्व इस प्रदेश में लिखे गये अथवा इसके इतिहास को काव्यबद्ध करने वाले प्रयत्नों के सिंहावलोकन के बिना सुनिश्चित करना कदाचित् काव्य के साथ अन्याय होगा।

(१) पृथ्वीराजविजय—जयानक द्वारा विरचित १२वीं शताब्दी की रचना है। इसमें सपादलक्ष के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। इसमें अजमेर के उत्तरोत्तर विकास का वर्णन है।

(२) हमीरमहाकाव्य—रणथम्भौर के चौहान-वंश के अध्ययन हेतु इसका महत्त्व है। हमीर की मृत्यु के लगभग १०० साल बाद इसकी रचना की गई। इसमें दिये गये तथ्य पूर्णतया प्रामाणिक हैं। अतः तत्कालीन सम-सामयिक घटनाओं के अलावा कई सामाजिक एवं धार्मिक पहलू भी इससे उजागर होते हैं।

(३) भट्टिकाव्य—यह काव्य सम्भवतः १५वीं शताब्दी में रचा गया था। जेसलमेर की सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का इसमें चित्रण है। रावल भीम को मथुरा-वृन्दावन यात्रा के अलावा महाराजा अक्षयसिंह द्वारा किया गया तुलादान एवं तत्कालीन स्थापत्य का वर्णन है।

(४) राजविनोद—बीकानेर नरेश कल्याणमल्ल (१५४२-१५८४ ई०) की आज्ञा से इस ग्रन्थ की रचना सदाशिव भट्ट ने की थी। इसमें किलों के निर्माण एवं विविध आयुधों के वर्णन प्रचुर मात्रा में हैं। इसमें तत्कालोन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति का अनूठा चित्रण है।

(५) कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनक-काव्य—१६वीं शताब्दी की यह रचना बीकानेर-नरेश के मन्त्री कर्मचन्द्र की आज्ञा से विरचित है। इसमें तत्कालीन मन्दिर, महल, पाठशालाएं, बाजार, बस्तियों के अलावा राजाओं के विद्यानुराग एवं वैभव की जानकारी है।

(६) अमरसार—महाराणा अमरसिंह प्रथम एवं महाराणा प्रताप के विषय में इससे काफी जानकारी मिलती है। इसमें तत्कालीन रहन-सहन, आमोद-प्रमोद आदि का सुन्दर चित्रण है।

(७) अमरकाव्य वंशावली—इस ग्रन्थ का प्रणेतारण छोड़ भट्ट था। मेवाड़ के शासकों को राजनैतिक सफलताओं का इसमें वर्णन है। जगह-जगह इसमें धर्म-यात्राओं, तुलादान, दीपावली, इत्यादि विभिन्न पक्षों को उजागर किया है। तत्कालीन सैनिकों की वेशभूषा एवं आयुधादि का भी इसमें वर्णन है।

(८) राजरत्नाकर—यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से भारी महत्त्व का है। इसमें राजसिंहकालीन दरबारी-जीवन का सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया गया है। तत्कालीन युद्ध एवं सन्धियों का जगह-जगह निरूपण है। महाराणा राजसिंह के काल में भट्ट सदाशिव ने इस ग्रन्थ की रचना की थी।[1]

---

१. डॉ० मूलचद पाठक, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, उदयपुर वि० वि० द्वारा संपादित (प्रकाशनाधीन)।

महाराणा अमरसिंह द्वितीय (१६६८-१७१०) के काल में वैकुण्ठ व्यास ने अमरसिंहअभिषेककाव्यम्[1] एवं अमरकाव्य[2] वंशावली की रचना की थी। पण्डित मंगला[3] ने "अमरनृप काव्य-रत्न" एवं भट्ट सोमेश्वर ने राजसिंह[4] राज्याभिषेक काव्य लिखा जिसमें महाराणा राजसिंह II (१७५४-१७६१) का राज्याभिषेक चित्रित है।

अरिसिंह[5] (१७६१-१७७३) के राज्यकाल में सोमेश्वर भट्ट ने देबारी के राजराजेश्वर मन्दिर हेतु एक प्रशस्ति लिखी थी।

जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ज्योतिष शास्त्र के महान् ज्ञाता एवं विद्याप्रमी थे। उनके पुत्र ईश्वरीसिंह के आदेश से देवर्षि कृष्णभट्ट ने ईश्वर-विलास-महाकाव्य[6] की रचना की। इसमें जयपुर नगर की स्थापना, जयसिंह के पुण्य कार्यों एवं उनके अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन है। चौहान वंश के बारे में प्रकाश डालने वाली सुजनचरित महाकाव्य की रचना चन्द्रशेखर नामक कवि ने १६वीं शताब्दी में की थी। इसके अलावा कोटा के महाराव उम्मेदसिंह को आधार बनाकर "उम्मेदसिंह चरितम्" नामक काव्य लिखा गया था जो अभी तक अप्रकाशित है। १७वीं शताब्दी के कवि विश्वनाथ ने "शत्रुशल्यचरितम्" नामक काव्य लिखा था जिसका प्रकाशन प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ने अब अपने हाथ में लिया है।

चौहानों के प्रारम्भिक वंश के वर्णन के साथ शत्रुशल्यचरित में अकबर से शाहजहां के काल तक की घटनाओं का प्रामाणिक विवरण है। रावरतन एवं शत्रुशल्य द्वारा बुरहानपुर, गुजरात, रणथम्भोर एवं दक्षिण की विविध लड़ाइयां का जीवन्त चित्रण है।

मारवाड़ के राजा अजीतसिंह (१७०७-१७२४) के काल में दो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्यों का प्रणयन किया गया। भट्ट जगजीवन ने अजीतो-

१. अमरसिंहअभिषेककाव्य—सम्पादित. दशरथशर्मा, मरुभारती 'पिलानी' साल १, नं० ३।
२. सरस्वती भवन वाचनालय, उदयपुर।
३. ओझा, राजस्थान का इतिहास, भाग २, पृ० ८६०।
४. ओझा, राजस्थान का इतिहास, भाग २, पृ० ९५४।
५. ओझा—राजपुताने का इतिहास, पत्र ९७३।
६. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रन्थांक, २९।

दय महाकाव्य[1] की रचना की थी। ये अजीतसिंह के दरबारी कवि थे। मारवाड़ की ऐतिहासिक घटनाओं एवं मुगल-मारवाड़ संबंधों का इसमें विस्तृत वर्णन है। इसके अलावा जोधपुर नगर का वर्णन, मण्डोर के बगीचे का सौन्दर्य तथा जन्म-मृत्यु, विवाहादि विषयक सामग्री का भी इसमें समावेश है। दीक्षित बालकृष्ण ने अजीत-चरित्र[2] नामक काव्य लिखा। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य का काफी महत्त्व है। महाराणा अभयसिंह के सम्मान में (१७२४-१७४९) अभयोदय[3] काव्य लिखा गया। भट्ट-हरिवंश ने महाराजा भीमसिंह की प्रशंसा में (१७९३-१८०३) भीम प्रबन्ध[4] नामक काव्य की रचना की। इसके अतिरिक्त मानसिंह-प्रशस्ति[5] एवं मानभास्करोदयचम्पू[6] नामक दो अल्पज्ञात काव्य भी मिलते हैं जिनमें तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ उस युग की परम्परा, विचारधारा एवं सामाजिक संगठन के भी दर्शन होते हैं।

[२]

मारवाड़ के इन ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा में सूरसिंह-वंश प्रशस्ति का महत्व कदाचिदपि न्यून नहीं है। इस काव्य में इतिहास एवं कविता का सुन्दर समन्वय है। चार सर्गों के इस काव्य में सूर्य-वंशीय राजाओं एवं राष्ट्रकूट नरेशों की विभिन्न गौरवमयी पराक्रम-गाथाओं का दिग्दर्शन है।

काव्य के प्रथम सर्ग में राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुये उन्हें राष्ट्रवर संबोधन से अभिहित किया गया है। राष्ट्रवर से ही कालान्तर में रट्ठवर, राठौड़ इत्यादि नामों का प्रचलन हुआ।

> ब्रह्मद्रवेन सुरनिम्नगया सदार्द्रं राष्ट्रं वरं यदिति तेन तदा शशासे।
> ख्यातास्ततःप्रभृति राष्ट्रवरास्तदीया अद्यापि लोककृत—
> रट्ठवराभिधानाः ॥१-५५॥

---

१. यह काव्य उम्मेद ओरिएन्टल सीरीज जोधपुर से प्रकाशित चुका है।।

२. पुस्तक-प्रकाश-संग्रहालय, जोधपुर फोर्ट, ग्रन्थ सं० २ : रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भा० १, पृ० २१।

३. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भा० १, पृ० २२।

४. ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ७७४।

५-६. महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में संगृहीत।

जहां तक राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न है, अधिकांश लोग इसे राष्ट्रवर अथवा राष्ट्रकूट शब्द से निष्पन्न मानते हैं। राठौडां री वंशावली में "श्रीमत् राष्ट्रवंशे नृपवरयशोराज्ञसिद्धार्थाभिधान:" कहकर इन्हें स्पष्टत: राष्ट्र-वंशी कहा गया है। इनके प्राकृत रूप 'रट्ठउड' 'राडउड' 'रट्ठ' लटिक, रटिक इत्यादि हैं। आदर सूचक के रूप में 'महा' शब्द के प्रयोग से महाराष्ट्र या महाराष्ट्रिक हो गया। अत: स्पष्ट है कि राठौड़ शब्द किसी जाति विशेष का द्योतक है, जिसे राष्ट्रवर या राष्ट्रकूट कहा जाता था।

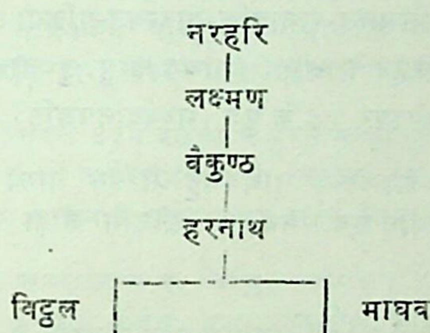
राठौड़ों की उत्पत्ति का विषय विवादास्पद है। भाटों के अनुसार राठौड़ हिरण्यकश्यप की सन्तान[१], दयालदास[२] के अनुसार सूर्यवंशी लेकिन भल्लराव ब्राह्मण की सन्तति, नणसी के अनुसार कन्नौज के जयचन्द्र के वंशज[३], टॉड[४] के अनुसार कुश की सूर्यवंशीय-सन्तान, राष्ट्रौढ़वंश-महाकाव्य[५] के अनुसार चन्द्रवंशीय, प० ओझा[६] के अनुसार राठौड़ चन्द्रवंशी हैं। प्रभास पाटन से उपलब्ध एक शिलालेख के अनुसार राठौड़ सूर्य एवं चन्द्रवंशों[७] से अलग हैं। दक्षिण भारत के शिलालेखों[८] में इन्हें रट्ट-यदुवंशी का वंशज कहा गया है। बर्नेल[९] के अनुसार राठौड़ द्रविड हैं तथा दक्षिण के रेड्डी और राठौड़ एक ही हैं। डॉ० अल्तेकर[१०] भी इन्हें दक्षिणी आर्य मानते हैं। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में जो राठौड़ों की वंशावलियां[११] मिली हैं उनमें इनकी उत्पत्ति महाराष्ट्र कोंकण में मानी गई है और वहां से गढ़ कल्याणी, कर्णाट तथा कन्नौज जाना बतलाया गया है। राठौड़-वंश[१२] की विगत के अनुसार राठौड़ों की उत्पत्ति चन्द्रकला नगरी के राजा से हुई थी।

---

१. राजस्थान रत्नाकर, भाग १, पृ० ८८।
२. दयालदास की ख्यात, भाग १, पृ० २-३।
३. नेणसी की ख्यात जि०-२ पृ० ५०-५५, ५८।
४. टॉड राजस्थान जि० १ पृ० १०५।
५. राष्ट्रौढ़वंश-महाकाव्य; सर्ग १, श्लोक १२-२६।
६. जोधपुर-राज्य का इतिहास; पृ० ८३।
७. नागरी प्रचारिणी सभा; पत्रिका, भाग ४, पृ० ३४७।
८. एपिग्राफिका-इण्डिका जि०-५ पृ० १९२-१९३।
९. साउथ-इंडियन-पैलियोग्राफी; पृ० १०।
१०. दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स (१९३४) पृ० १-२६ तक
११. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर; ग्रंथ सं० १७८००, ३४५४७।
१२. राठौड़ वंश री विगत; प० १।

[३]

काव्य के चतुर्थ सर्ग के अन्त में कवि ने अपने आपको श्रीमालीज्ञातीय, वत्सगोत्रीय, त्रिपाठीकुलोत्पन्न अभिहित किया है। इनके पूर्वज नरहरि थे जो रत्नजड़ित-चाँदी का झूला अपने घर पर रखते थे। इनके सुपुत्र लक्ष्मण भी वैसे ही समृद्ध थे। लक्ष्मणात्मज वैकुण्ठ ने मुसलमानों द्वारा बलपूर्वक हरण की गई ब्राह्मणों की स्त्रियों को प्रभूत धनसम्पदा व्यय कर संकट मुक्त करवाया था। इनके आत्मज हरनाथ थे जिनके दो पुत्र—विट्ठल एवं माधव थे। इन्हीं माधवभट्ट ने प्रस्तुत काव्य की रचना की है। इनके वंशवृक्ष को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—



(१) आसीद्वेदविदां वरोतिविशदो यो वत्सगोत्रे द्विजः।
श्रीमान्दानिगणाग्रणी नरहरिः श्रीमालिनामन्वये।
येनानेककरत्नमौक्तिकतुलारुढेण रौक्मीं तुलां,
काश्चित्स्वात्परिवारतोनुभवने दास्योपि संरोपिता।४-४०॥

तत्पुत्रोपि तथैव लक्ष्मण इति ख्यातस्त्रिपाठी ततो,
वैकुण्ठः किल येन विप्रवनिता म्लेच्छौघबंदीकृताः।
दत्त्वा द्रव्यचयानमोक्षत ततः सूनुः सतामग्रणी
संजज्ञे हरनाथ इत्यथ ततो विद्वानभूद्विट्ठलः॥४१॥

युक्तिव्यक्तिस्तदनुजनुषा माधवेन व्यधायि
स्फूर्जंत्येषा भवतु भुवने सूरसिंहप्रशस्तिः।
दोषं दूरीकुरुत कवयः सद्गुणं धत्त यस्मात्
संत सत्यं किल परगुणग्राहिणस्ते प्रशस्ताः॥४२॥

कवि माधवभट्ट अहंमन्यता से दूर साक्षात् विनम्रता के स्वरूप हैं। काव्यसमाप्ति पर 'दोषं दूरी कुरुत कवयः सद्गुणं धत्त यस्मात्' कहते हुये कवि ने अपनी रचना को विविध अलंकारों एवं कवि-दक्षता से विहीन कहा

जहां तक राठौड़ शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न है, अधिकांश लोग इसे राष्ट्रवर अथवा राष्ट्रकूट शब्द से निष्पन्न मानते हैं। राठौडां री वंशावली में "श्रीमत् राष्ट्रवंशे नृपवरयशोराजसिद्धार्थाभिधान:" कहकर इन्हें स्पष्टतः राष्ट्र-वंशी कहा गया है। इनके प्राकृत रूप 'रट्ठउड' 'राडउड' 'रट्ट' लटिक, रटिक इत्यादि हैं। आदर सूचक के रूप में 'महा' शब्द के प्रयोग से महाराष्ट्र या महाराष्ट्रिक हो गया। अतः स्पष्ट है कि राठौड़ शब्द किसी जाति विशेष का द्योतक है, जिसे राष्ट्रवर या राष्ट्रकूट कहा जाता था।

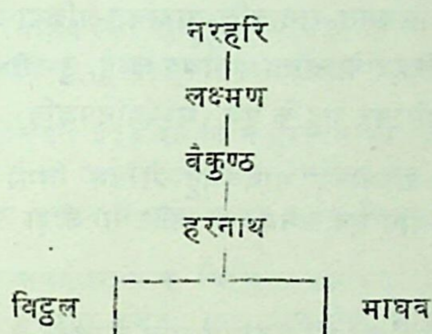
राठौड़ों की उत्पत्ति का विषय विवादास्पद है। भाटों के अनुसार राठौड़ हिरण्यकश्यप की सन्तान[१], दयालदास[२] के अनुसार सूर्यवंशी लेकिन भल्लराव ब्राह्मण की सन्तति, नणसी के अनुसार कन्नौज के जयचन्द्र के वंशज[३], टॉड[४] के अनुसार कुश की सूर्यवंशीय-सन्तान, राष्ट्रौढ़वंश-महाकाव्य[५] के अनुसार चन्द्रवंशीय, प० ओझा[६] के अनुसार राठौड़ चन्द्रवंशी हैं। प्रभास पाटन से उपलब्ध एक शिलालेख के अनुसार राठौड़ सूर्य एवं चन्द्रवंशों[७] से अलग हैं। दक्षिण भारत के शिलालेखों[८] में इन्हें रट्ट-यदुवंशी का वंशज कहा गया है। बर्नेल[९] के अनुसार राठौड़ द्रविड हैं तथा दक्षिण के रेड्डी और राठौड़ एक ही हैं। डॉ० अल्तेकर[१०] भी इन्हें दक्षिणी आर्य मानते हैं। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में जो राठौड़ों की वंशावलियां[११] मिली हैं उनमें इनकी उत्पत्ति महाराष्ट्र कोंकण में मानी गई है और वहां से गढ़ कल्याणी, कर्णाट तथा कन्नौज जाना बतलाया गया है। राठौड़-वंश[१२] की विगत के अनुसार राठौड़ों की उत्पत्ति चन्द्रकला नगरी के राजा से हुई थी।

---

१. राजस्थान रत्नाकर, भाग १, पृ० ८८।
२. दयालदास की ख्यात, भाग १, पृ० २-३।
३. नैणसी की ख्यात जि०-२ पृ० ५०-५५, ५८।
४. टॉड राजस्थान जि० १ पृ० १०५।
५. राष्ट्रौढ़वंश-महाकाव्य; सर्ग १, श्लोक १२-२६।
६. जोधपुर-राज्य का इतिहास; पृ० ८३।
७. नागरी प्रचारिणी सभा; पत्रिका, भाग ४, पृ० ३४७।
८. एपिग्राफिका-इण्डिका जि०-५ पृ० १९२-१९३।
९. साउथ-इंडियन-पैलियोग्राफी; पृ० १०।
१०. दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स (१९३४) पृ० १-२९ तक
११. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर; ग्रंथ सं० १७८००, ३४५४७।
१२. राठौड़ वंश री विगत; प० १।

[३]

काव्य के चतुर्थ सर्ग के अन्त में कवि ने अपने आपको श्रीमालीज्ञातीय, वत्सगोत्रीय, त्रिपाठीकुलोत्पन्न अभिहित किया है। इनके पूर्वज नरहरि थे जो रत्नजड़ित-चाँदी का झूला अपने घर पर रखते थे। इनके सुपुत्र लक्ष्मण भी वैसे ही समृद्ध थे। लक्ष्मणात्मज वैकुण्ठ ने मुसलमानों द्वारा बलपूर्वक हरण की गई ब्राह्मणों की स्त्रियों को प्रभूत धनसम्पदा व्यय कर संकट मुक्त करवाया था। इनके आत्मज हरनाथ थे जिनके दो पुत्र—विट्ठल एवं माधव थे। इन्हीं माधवभट्ट ने प्रस्तुत काव्य की रचना की है। इनके वंशवृक्ष को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—



(१) आसीद्वेदविदां वरोतिविशदो यो वत्सगोत्रे द्विजः।
श्रीमान्दानिगणाग्रणी नरहरिः श्रीमालिनामन्वये।
येनानेककरत्नमौक्तिकतुलारुढेण रौक्मीं तुलां,
काश्चित्स्वातपरिवारतोनुभवने दास्योपि संरोपिता ।४-४०।।

तत्पुत्रोपि तथैव लक्ष्मण इति ख्यातस्त्रिपाठी ततो,
वैकुण्ठः किल येन विप्रवनिता म्लेच्छौघबंदीकृताः।
दत्वा द्रव्यचयानमोक्षत ततः सूनुः सतामग्रणी
संजज्ञे हरनाथ इत्यथ ततो विद्वानभूद्विट्ठलः ।।४१।।

युक्तिव्यक्तिस्तदनुजनुषा माधवेन व्यधायि
स्फूर्ज्जत्येषा भवतु भुवने सूरसिंहप्रशस्तिः।
दोषं दूरीकुरुत कवयः सद्‌गुणं धत्त यस्मात्
संत सत्यं किल परगुणग्राहिणस्ते प्रशस्ताः ।।४२।।

कवि माधवभट्ट अहंमन्यता से दूर साक्षात् विनम्रता के स्वरूप हैं। काव्यसमाप्ति पर 'दोषं दूरी कुरुत कवयः सद्‌गुणं धत्त यस्मात्' कहते हुये कवि ने अपनी रचना को विविध अलंकारों एवं कवि-दक्षता से विहीन कहा

है। कवि का विश्वास है कि उत्तम पुरुषों का चित्रण होने से यह कृति कलिकालतापनाशिनी सिद्ध होगी।

आफ्रेट के बृहत्सूची पत्र भाग-१, पृ०-४४६ पर माधव भट्ट नामक ६ अलग-अलग विद्वानों एवं माधव नाम से ५० व्यक्तियों का उल्लेख है।

१. माधव भट्ट—विनायक भट्ट के पिता (कौषीतकि-ब्राह्मण)
२. माधव भट्ट—गोविन्दराज के पिता (मनु टीका)
३. " " —सोमेश्वर भट्ट के पिता (न्याय-सुधा)
४. " " —कान्ह के पुत्र। वत्सराज के पौत्र (सिद्धान्त-रत्नावलि-सारस्वत-प्रक्रिया टीका)
५. " " —हरिहर के भ्राता (माधव चम्पू, सुभद्राहरण)
६. " " —रामेश्वर भट्ट के पुत्र (अर्घ्यदानपद्धति)

अतः स्पष्ट है कि आलोच्य माधवभट्ट से इन नामों का समीकरण नाम साम्य के अलावा स्थान एवं समय की दृष्टि से जोड़ा जाना समीचीन नहीं है।

'सूरसिंह-वंश-प्रशस्ति' की जो एकमात्र प्रति उपलब्ध है उसमें वि० सं० १७७७ (१७२० ई०) प्रति का लेखन काल दिया गया है। प्रतिलिपिक के लेखकीय नाम एवं लेखन-स्थलादि विवरण पर काली स्याही फेर देने से लेखकीय है या नहीं, इसका निर्धारण करना दुष्कर है। इस विषय में निम्नांकित बिंदु विचारणीय हैं—

१. प्रति का प्रतिलिपि काल सन् १७२० ई० है जो महाराजा अजीतसिंह का काल है। अगर रचनाकार अजीतसिंहकालीन है तो सूरसिंह (१५६५-१६१६ ई०) तक का ही विवरण क्यों दिया गया है।

२. काव्य के १-३ तीन सर्गों में सभी महाराजाओं के जीवन की थोड़ी-थोड़ी घटनाओं का वर्णन है लेकिन चतुर्थ सर्ग में जहां से प्रशस्ति प्रारम्भ होता है—सूरसिंह द्वारा लड़े गये सभी प्रमुख युद्धों के वर्णन के साथ-साथ उनके जीवन की घटनाओं का भी वर्णन है। ऐसा विस्तृत वर्णन किसी महाराजा का नहीं किया गया है;

३. सूरसिंह को चतुर्थ सर्ग में सर्वत्र साक्षात् सम्बोधित कर उसके द्वारा लड़े गये युद्धों को याद दिलाई गई है। ऐसा लगता है जैसे कवि सूरसिंह विषयक अभिनन्दनपत्र का पठन कर रहा है।

४. प्रशस्ति लेखन सामान्यतया व्यक्ति के जीवन काल में हुआ करता है;

५. कवि के पूर्वज और सभी बान्धवगण अत्यन्त धनाढ्य थे। स्वयं कवि ने उनके लिए दानी, गणाग्रणी शब्दों का प्रयोग किया है। इनके घर पर रत्न-जड़ित चाँदी का झूला था। कवि के दादा ने मुसलमानों को प्रचुर धन देकर ब्राह्मण स्त्रियों को उनके बन्धन से मुक्त कराया था। बिना राज्याश्रय के यह संभव प्रतीत नहीं होता।

६. प्रति में उपलब्ध पाठ जगह-जगह अशुद्ध है। कई स्थानों पर छन्दोभङ्ग भी मिलता है। मूल कवि से अशुद्धि की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः यह प्रति मूल की प्रतिलिपि होनी चाहिये।

७. ग्रन्थ का नामकरण राष्ट्रकूट—वंशावली के बजाय सूरसिंहवंश प्रशस्ति करना भी कवि का सूरसिंह-कालीन होना पुष्ट करता है।

८. चतुर्थ सर्गान्तर्गत ३३वें श्लोक में पुरातन-कालीन भास्करजन्मोद्भव-चिह्नित राष्ट्रकूट-वश को जर्जराभिधान से चित्रित कर सूर्यक्षितिपालावतार से इसके नवीनीकरण के क्रम में सूर्यवंश का वर्णन किया है।

श्री सूर्यस्यचिरन्तनेनजनुषा य चिह्नितः प्रागभूत्
वंश सम्प्रति जर्जरः समभवत्कालस्य बाहुल्यतः
श्रीसूर्यक्षितिपाल तं नवयितुं नीतावतारस्त्वया
जीर्णोद्धारवदेष यद्विरचितः श्रीसूर्यवंशः पुनः ।।३७।।

'वंशः सम्प्रति जर्जरः समभवत्कालस्य बाहुल्यतः' आदि अभिधान राष्ट्रकूट वंश के जर्जर काल को ही द्योतित करते हैं। महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम (१६३८-१६७८ ई०) के जमरुद में देहावसान के पश्चात् सन् १६७८-१७०७ ई० की दीर्घावधि मारवाड़ के राष्ट्रकूट वंश की निष्कासनावधि है क्योंकि इस काल में मारवाड़ राज्य मुगलाश्रय में रहा था। राव मालदेव १५३२-१५६२ ई० के निधनोपरान्त उनके उत्तराधिकारी चन्द्रसेन से ई० सन् १५६५ में मुगलसेना ने जोधपुर का किला छीन लिया था। एक अन्तराल के बाद सन् १५८३ में राजा उदयसिह को मारवाड़ राज्य पुनः प्रदान कर दिया गया।

मालदेव के पुत्रों की आपसी कलह के परिणाम स्वरूप ही इनका राज्य मुगलों को मिल जाना तथा एतन्निमित समस्त भाईयों का इधर-उधर भटकना भी एक दृष्टि से इस वंश का जर्जर काल कहा जा सकता है। जो भी स्थिति रही हो कवि द्वारा सूरसिंह को इस वंश के जीर्णोद्धारक के रूप में चित्रित करने व इसी निमित्त प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन इसी अनुमान को बल देते है कि प्रस्तुत रचना सूरसिंह कालीन है।

यह सर्व विदित है कि सवाई राजा सूरसिंह ने दक्षिण एवं गुजरात विजय के बाद जोधपुर में एक यज्ञ किया था। उसमें सुवर्णदान होने का भी उल्लेख है। संभव है कि उस काल में माधव भट्ट ने प्रस्तुत प्रशस्ति की रचना की हो। प्रयुक्त प्रति मूल ग्रन्थ की प्रतिलिपि हो सकती है। अन्यथा सूरसिंह की मृत्यु के १०० साल बाद (प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते) प्रशस्ति लेखन अप्रासंगिक व प्रयोजनहीन होता।[१]

[४]

प्रस्तुत प्रति का सम्पादन इस ग्रन्थ[२] की एक मात्र उपलब्ध प्रति के आधार पर किया गया है। ग्रन्थ का सामान्य परिचय निम्न प्रकार से है—

ग्रन्थ नाम—सूरसिंह वंश प्रशस्ति[३]
कर्त्ता—माधव भट्ट (श्रीमाली ब्राह्मण)
पत्र संख्या—५४
ग्रन्थ-माप—२२.५ × ११ सेन्टीमीटर
प्रति पत्र पंक्ति = ७
" " अक्षर—२०
आधार—कागज
प्रतिलिपि काल—वि० सं० १७७७
विशेष ज्ञातव्य—प्रतिपूर्ण है। मोटे अक्षर। काली स्याही का प्रयोग। प्रति सुवाच्य।

[५]

काव्य के प्रारम्भिक १० पद्यों में ईश्वर स्तुतिपरक मङ्गलगान प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् सृष्टिकाम भगवान् विष्णु द्वारा कमलनाल और उससे ब्रह्मा का प्रादुर्भाव चित्रित किया गया है। तत्पश्चात् त्रिजगत् विधान हेतु आदिष्टु ब्रह्मा द्वारा सृष्टि संरचना वर्णित है। इस क्रम में मरीचि से

---

१. भूमिका के प्रारंभिक आठ पृष्ठ मुद्रित होने के पश्चात् कवि माधवभट्ट के सम्बन्ध में उनकी वंशावली तथा उनके वंशधरों से जो शोध-सूत्र प्राप्त हुआ है उस आधार पर माधवभट्ट का सूरसिंह के ही काल में होना प्रमाणित हुआ है। इस समस्त सामग्री को परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

२. संस्कृत-प्राकृत सूची पत्र; भाग IX, पृ०, १६७।

३. प्रथम सर्ग के अन्त में सूरसिंह प्रकाश व तृतीय सर्ग के अन्त में सूर प्रकाश नाम से अभिहित किया है।

लेकर राजा वंभ तक विस्तृत वंशावली दी गई है। इस क्रम में कवि ने इन पौराणिक शासकों के जीवन एवं उनके द्वारा लड़े गये युद्धों का वर्णन करते हुए तत्कालीन प्रमुख घटनाओं का भी दिग्दर्शन कराया है। इस सर्ग में उल्लिखित राजाओं के नामों के आधार पर उनकी सामान्यतः वंशावली को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है -

श्री नारायण[१], ब्रह्मा[२], मरीचि[३], कश्यप[४], ब्रह्मा के अंगुष्ठ से कन्या[५], दक्ष[६], शत मरीचि[७], सूर्य[८], श्राद्धदेव[९], इक्ष्वाकु[१०], विकुक्षि[११], वृषवर्म[१२], अनेना[१३], विश्वगंध[१४], इन्द्र[१५], युवनाश्व[१६], शावस्त[१७], वृहदश्व[१८], कुवलयाश्व[१९], नाम धुंधुमार[२०], दृढाश्व[२१], हरियश[२२], निकुंभ[२३], वर्हणाश्व[२४], कृशाश्व[२५], सेनजित्[२६], युवनाश्व[२७], मान्धाता[२८], पुरुकुत्स[२९], त्रिदश[३०], अनरण्य[३१], हर्यश्व[३२], प्रणव[३३], त्रिवंधन[३४], सत्य व्रत[३५], हरिश्चन्द्र[३६], रोहिताश्व[३७], हरित[३८], चंप[३९], सुदेव[४०], विजय[४१], भरुक[४२], वृक[४३], वाहुक[४४], सगर[४५], अजमंजस[४६], अंशुमान[४७], दिलीप[४८], भगीरथ[४९], श्रुत[५०], नाभ[५१], सिंधुद्वीप[५२], अयुतायु[५३], ऋतुपर्ण[५४], सर्वकाम[५५], सुदास[५६], अश्मक[५७], मूलक[५८], पंक्तिरथ[५९], एलविल[६०], विश्वसह[६१], खट्वांग[६२], दीर्घवाहु[६३], रघु[६४], अज[६५], पंक्तिरथ[६६], रामचन्द्र[६७], कुश[६८], अतिथि[६९] निषध[७०], नल[७१], पुंडरीक[७२], क्षेमध्वनि[७३], देवनीक[७४], अहीन[७५], पारियात्र[७६], दलो[७७], अर्क[७८], वज्रनाभ[७९], सगण[८०], वृहत्[८१], हिरण्यनाभ[८२], पुष्य[८३], ध्रुवसंधि[८४], भव[८५], सुदर्शन[८६], अग्निवर्ण[८७], शीघ्र[८८], मरु[८९], प्रश्नयुत[९०], सिंधु[९१], अमर्षण[९२], सहस्वान[९३], प्रसेनजित[९४], तक्षक[९५], वृहद्दल[९६], वृहद्रण[९७], गुरुक्रिय[९८], वत्सवृद्ध[९९], प्रतिव्योम[१००], भानु[१०१], विश्वक[१०२], वाहनीपति[१०३], सहदेव[१०४], वीर[१०५], वृहदश्व[१०६], भानुमान[१०७], प्रतीक[१०८], सुप्रतिकाश[१०९], मरुदेव[११०], क्षत्र[१११], पुष्कर[११२], अंतरिक्ष[११३], वृहद्भानु[११४], वर्हि[११५], कृतंजय[११६], रणंजय[११७], संजय[११८], श्राव[११९], शुद्धोद[९२०], लांगल[९२९], प्रसेनजित[९२२], क्षुद्रक[९२३], रुणक[९२४], सुरथ[९२५], सुमित्र[९२६], वलि[९२७], ज्ञानपति[९२८], तुंगनाथ[९२९], भरत[९३०], पुञ्जराज[९३९], धर्म[९३२], वंभ[९३३]।

---

१. १/११; २. १/१२; ३. १/१४; ४. १/१४; ५. १/१५; ६. १/१५; ७. १/१६; ८. १/१७; ९. १/१८; १०. १/१८; ११. १/१८; १२. १/१९; १३. १/१९; १४. १/१९; १५. १/१९; १६. १/२०; १७. १/२०; १८. १/२१; १९. १/२१; २०. १/२१; २१. १/२२; २२. १२२; २३. १२२; २४. १/२२; २५. १/२२; २६. १/२२; २७. १/२३; २८. १/२३; २९. १/२३; ३०. १/२३; ३१. १/२३;

(शेष भाग १७२ पर)

वंभ वंशान्वययियों के क्रम में अजयचन्द्र, सुभटराज, विजयचन्द्र के वर्णन से द्वितोय सर्ग का समारम्भ किया गया है। दलपंगुनाम्ना[१] उपाधि से विभूषित कन्नौज नृप जयचन्द्र एक पराक्रमी एवं यशस्वी सम्राट् थे (५९-६०)। भूमण्डल के निखिल नृपगणों को स्वायत्त करने की महत्ती आकांक्षा से इन्होंने राजसूय-यज्ञ का समारम्भ किया था (६१) किन्तु इन्द्र-प्रस्थाधिपति पृथ्वीराज चौहान द्वारा उसे विफल कर दिया गया।

आरेभे राजसूयं स किल कलियुगे क्रूरकालेपि मत्वा
सर्व्वोर्वीशान्स्ववश्यान्निखिलवसुमतीमंडलाकृष्टलक्ष्मीः
इंद्रप्रस्थाधिपस्तं रुचिरमवसरं वीक्ष्य विख्यातवीर्यः
पृथ्वीराज समन्तात्सपादि विघटयामास देशानमुष्य ।।२-६२।।

उक्त घटना के पश्चात् जयचन्द्रनृप द्वारा संयोगिता स्वयम्वर का आयोजन एवं इन्द्रप्रस्थाधिप पृथ्वीराज द्वारा उसका बलपूर्वक अपहरण (६५), आयोजन में समागत समस्त नृपगणों की पृथ्वीराज के हाथों पराजय एवं सत्र समापन को घोषणा वर्णित है (६५)।

सम्राट् जयचन्द्र के ही तुल्य उसका पुत्र जयसेन हुआ और जयसेन के सोतराम नामक पुत्र हुआ।

तस्मादभूत्तादृश एव वीरो जेता रिपूणां जयसेन नाम ।
सुतस्ततः पूरितसर्वकामः कामाभिरामः किल सितरामः ।।२-७०।।

(पृष्ठ ७१ का पादटिप्पणी का शेषांश)

३२. १/२४; ३३. १/२४; ३४. १/२४; ३५. १/२४; ३६. १/२४; ३७. १/२५; ३८. १/२५; ३९. १/२५; ४०. १/२५; ४१. १/२५ ४२. १/२५, ४३-४४. १/२५; ४५-४९. १/२६; ५०-५४. १/२८; ५५-५९. १/२९; ६०-६४. १/३०; ६५-६७. १/३२; ६८-७०. १/३४; ७१.७२. १३५; ७३-७८. १/३६; ७९ ८०. १/३७; ८१-८२. १/३८; ८३-८७. १/३९; ८८. १/४१; ८९ १/४२; ९०-९५. १/४२; ९६-१०२. १/४३; १०३-१०७. १/४४; १०८-११३. १/४५; ११४-१२१. १/४६; १२२-१२६. १/४७; १२७. १/४८; १२८. १/५०; १२९. १/५०; १३०. १/५१; १३१. १/५६; १३२. १/५७; १३३. १५७।

---

१. बांकीदास री ख्यात; राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला; पत्र सं० ३, मारवाड़ का इतिहास, विश्वेश्वरनाथ रेऊ, भाग १, पत्र सं०-३१।

बांकीदास[1], नैणसी की ख्यात[2] एवं राठौड़ां री वंशावली[3] में जयसेन-नामा जयचन्द्रात्मज का उल्लेख नहीं है। नैणसी एवं बांकीदास के अनुसार जयचन्द्र के पुत्र का नाम वरदायीसेन था। १६५० ई० के तत्कालीन बीकानेर नरेश रायसिंह[4] के एक लेख में विजयचन्द्र से पूर्व की पीढ़ियों का उल्लेख है। तदनुसार विजयचन्द्र, जयचन्द्र, वरदायीसेन, सीतराम और सीहाजी के नाम मिलते हैं। इतिहास के ग्रन्थों एवं स्वयं जयचन्द्र के ताम्रपत्रों में जयचन्द्र के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र वर्णित है। इतिहासकारों में हरिश्चन्द्र एवं वरदायी सेन के विषय में विवाद है। या तो वरदायी सेन[5] हरिश्चन्द्र की उपाधि थी अथवा दोनों भाई थे। जयसेन का उल्लेख प्रस्तुत प्रशस्ति के अलावा अन्यत्र नहीं मिला है।

सीतराम का पुत्र सीहा[6] (७१) सिंह के समान पराक्रमी था। राव सीहा ने कांची, द्वारका, हरिद्वार आदि पावन तीर्थ-स्थानों की यात्रा की थी। यात्रा के बाद पाटण के राजा मूलराज सोलंकी के यहां आतिथ्य स्वीकार किया और उसके अनुरोध करने पर जाडेचान्वयज लाखा[7] का वध किया। (७३) लाखा खेडकोट का राजा था। उसने काठियों को दबाकर काठियावाड़ के कुछ भाग पर कब्जा कर लिया था। लाखा-वध की घटना के बारे में इति-

---

१. बांकीदास की ख्यात—राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, २१, पत्र १०।
[बांकीदास के अनुसार वंशक्रम में विजयचंद-जयचंद-वरदायीसेन सेन-सेतराम-सीहा]।

२. नैणसी की ख्यात, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला; भाग ३, पृ० १८०।

३. राठौड़ां री वंशावली, ६३, राज० पुरातन ग्रंथमाला, पत्र सं० ३०।

४. तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचंद्रस्ततोऽभवत्।
वरदायीसेन नामा तत्पुरुषोऽतुल विक्रमः ॥
(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, १६२०, भाग १६, पृ० २७६।

५. रेऊ-मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ३२।

६. रेऊ-मारवाड़ के इतिहास में सीहा को सीतराम का भाई मानते हैं। भाग १, (पृ० ३२)।

७. कच्छा के जाडेचान्वय नरेशों में लाखा नाम के तीन व्यक्ति मिलते हैं। डफ की क्रॉनॉलॉजी ऑफ इण्डिया द्रष्टव्य। कहीं पर इसकी मृत्यु इसके जामाता के हाथ से होना और कहीं पर मूलजी बाघेला के हाथ से, कहीं पर सीहाजी के द्वारा मारा जाना लिखा है। परन्तु इसके समय के बारे में काफी विवाद है (पृ० २६०, २१५-२१६)।

हासकारों में मतैक्य नहीं है। हेमचन्द्र[1] के 'द्वयाश्रय काव्य के पञ्चम सर्ग के अनुसार सोलंकी राजा मूलराज प्रथम ने कच्छ के राजा लाखा को मार डाला। सांभर[2] से प्राप्त सोलंकियों के एक शिलालेख के अनुसार मूलराज ई० सन् ९९४ तक जीवित था। सीहाजी[3] का काल ई० सन् १२१२-७३ है; अतः सीहाजी के द्वारा लाखा का वध सम्भव प्रतीत नहीं होता है।

जब वि० सं० १२५३ में मुसलमानों के आक्रमण से कन्नौज का राज्य जाता रहा तो सेतराम और सीहाजी (खोर) शम्साबाद की तरफ चले गये और कुछ दिन महुई[4] में रहे। यहां मुसलमानों का उपद्रव होने पर मारवाड़ की तरफ आ गये। अधिकांश इतिहासकार सीहाजी[5] का मारवाड़ आने का समय वि० सं० १२६८ (ई० सन् १२१२) के करीब मानते हैं। मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी का वि० सं० १२१२ में मारवाड़ आना लिखा है। कन्नौजपति जयचन्द्र की मृत्यु वि० सं० १२५० में हो गई थी। अतः सीहाजी के मारवाड़ आगमन को वि० सं० १२५० के बाद ही मानना पड़ेगा। पाली में सोहा का मृत्यु-स्मारक विद्यमान है, जिससे वि० सं० १३३० में उनकी मृत्यु की पुष्टि होती है।

राव सीहा के तीन पुत्र थे—आस्थान, सोनग और अज (७५)।[6] इनके

---

१. यह काव्य ई० सन् ११७६ के करीब विरचित है।
'कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लक्षं चुलुक्यराट्' ॥१२७॥
२. वसुनन्दनिधौ वर्षे व्यतीते विक्रमार्कतः
मूलदेवनरेशस्तु चूडामणिरभूद् भुवि ॥१॥
३. आईने अकबरी के अनुसार मोइज़ुद्दीन साम (गोरी) ने जब रायपिथौरा की लड़ाई से फुरसत पाई तब वह कन्नौज के राजा जयचन्द के मुकाबले के लिये चल पड़ा। जयचंद हारकर भागा और गंगा नदी में डूब कर मर गया। उसका भतीजा सीहा, जो शम्साबाद में रहता था, बहुत से आदमियों के साथ मारा गया (भाग २, पृ० २०७) (यह वर्णन ठीक प्रतीत नहीं होता है)।
४. महुई गांव फर्रुखाबाद जिले में है। वहां पर काली नदी के किनारे सीहाजी के निवास स्थान के खण्डहर अब तक विद्यमान हैं। लोग उन्हें आज भी सीहा राव का खेड़ा नाम से पुकारते हैं। (रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ३२)
५. एनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान—भाग २, पृ० ९४०।
कनिंघम—आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, भाग ११, पृ० १२३।
६. मारवाड़ का इतिहास—रेऊ, भाग १, पृ० ३३।
मारवाड़ का इतिहास—रेऊ, भाग १, पृ० ४।

भीम नाम का एक चौथा पुत्र था। आसथान का जन्म १२१२ ई० में हुआ था। इन्होंने डाभी राजपूतों को अपनी ओर मिलाकर (७५) गुहिल क्षत्रियों से खेड का राज्य छीन लिया था।

खेडनगर में पहले-पहल अपनी राजधानी बनाने के कारण इनके वंशज खेड़ेचा (७५) कहलाने लगे। कुछ समय के बाद आसथान ने ईडर के राजा का वध कर अपने भाई सोनग को वह राज्य प्रदान (७५) किया। अज ने ओखा-मंडल (शंखोद्धार-द्वारका) के स्वामी चावड़ा भोजराज को मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।

आसथान[1] के ८ पुत्र थे। ई० सन् १२६१-६२ में धूहड़ का राज्याभिषेक किया गया। इन्होंने कर्णाटक प्रदेश से अपनी इष्टदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लाकर नागाणा[2] नामक गांव में (७६) स्थापित की। तभी से इस देवी का नाम नागणेची[3] प्रसिद्ध हुआ। कर्नल टॉड[4] के अनुसार भी यह मूर्ति कर्णाटक में थी।

> आस्थानोर्व्वीधारिणो धूहडोऽभूत्
> कार्णाटेभ्यश्चक्रदेवी स्ववास।
> नागाणं यत्पत्तने तेन नीता
> नागाणेची गीयते तेन लोकैः ॥२-७६॥

कुछ ख्यातो में इस मूर्ति का कल्याणी (दक्षिणी कोंकन) से लाया जाना लिखा है।

जयचन्द ने जब चित्तौड़ विजय किया था तब वहां भी अपनी कुलदेवी[5] का (नागाणेची) मन्दिर बनवाया था। इनके (धूहड़जी) ज्येष्ठ पुत्र रायपाल

---

१. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० ४५।
२. यह गाँव खेड से १० कोस की दूरी पर है।
३. जोधाजी के ताम्रपत्र की नकल से प्रकट होता है कि राव धूहड़जी के समय लुंब ऋषि नामक सारस्वत ब्राह्मण कन्नौज से राठौड़ों की कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लेकर मारवाड़ आया था। इसके बाद उक्त देवी ने राव धूहड़जी को नाग के रूप में दर्शन देकर वर दिया, तब से वह नागनेचियाँ नाम से प्रसिद्ध हुई।
(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ४७)
४. एनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग २, पृ० ९४३।
५. रेऊ; मारवाड़ का इतिहास, भाग १. पृ० ४६।

थे जो अन्नसत्र में रंतिदेव के सदृश थे। इन्हें 'महीरेल्लण' (इन्द्र) नाम से भी पुकारा जाता था (७७-७९) कहते हैं कि—एक समय राज्य में अकाल पड़ने पर इन्होंने राजकीय भण्डार से अनाज वितरण किया। इन्होंने भाटी यादव चन्द[1] को बहुत-सा द्रव्य लेकर अपना चारण बनाया था।

इसके बाद वह्नि के समान तेजस्वी कन्हड़ (१३१३-१३२३ ई० सन्) और उनके बाद सत्यवक्ता जालणसाजी (१३२३-१३२८ ई०) हुये। अपने पिता की आज्ञा का पालन कर इन्होंने परमारवंशी सोढों को दण्ड दिया (८०-८३)। रवेड़ में घटी एक साधारण घटना के कारण इनका सोढों के साथ युद्ध हुआ। इन्होंने चाँदणी गाँव के एक वृक्ष के फल, पत्र, आदि तोड़ने की मनाही कर रखी थी। सोढ़ों ने इसका उल्लंघन किया अतः दण्ड के रूप में उनका सर्वस्व छीन लिया। इसके बाद अग्नि के समान तेजस्वी एवं पिता की आज्ञा का पालन करने वाला छाडा[2] (१३२८-४४ ई०) हुआ। इन्होंने भी परमार वंशो सोढ़ों को पराजित किया। (८३) इसके अलावा इन्होंने जैसलमेर के भाटियों को पराजित कर उनकी कन्या से विवाह किया था। इनके सात पुत्रों में तीड़ा (१३४४-१३५७) ज्येष्ठ थे। इन्होंने स्वर्णगिरीश्वर सामंतसिंह को युद्ध में (८४) पराजित किया था। तीड़ा के तीन पुत्र थे—(१) कान्हड़देव, (२) त्रिभुवनसी और (३) सलखा। सलखा के चार पुत्र थे (८५)—(१) मल्लदेव, (२) जैत्रमल्ल, (३) वीरमजी (४) शोभित। सिवाना के शासक (८६) वीरमदेव मल्लदेव के छोटे भाई थे। जोद्रक राजा को पराजित करने गये व वडेरणीन्द्र को मारा एवं इस युद्ध में वे स्वयं भो मारे गये (८९)। यहां वडेरणीन्द्र एवं जोद्रकराज संभवतः दोनों एक ही व्यक्ति को परिलक्षित करते हैं। इनके पाँच पुत्र थे।

---

१. यह मांगा की चारण जाति की स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ था। इसके वंशज रोहड़िया बारहठ कहलाते हैं। (रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ४८)

२. राव जालणसाजी को पराजित सोढ़ों ने कुछ घोड़े भेट देने का वायदा किया था, किन्तु राव जालणसाजी की मृत्यु तक वह वायदा पूरा नहीं किया। कहते हैं कि अपने स्वर्गवास के समय रावजी ने अपने राजकुमार को इस भेंट को वसूल करने की खास हिदायत दी थी। अपने पिता की अन्तिम आज्ञानुसार इन्होंने सोढ़ा दुर्जनसाल पर चढ़ाई कर उसे अपने पहले किये गये वायदे से चौगुने घोड़े देने को बाध्य किया था। (रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ५०)

राव चूंडा (ई० सं० १३६४-१४२४) वीरमजी[1] के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म ई० सन् १३७७ में हुआ था।

इन्होंने मंडोवर[2] के नागवंशीय राजाओं को अपनी छल-बल नीति से समाप्त कर दिया (६०)। इनकी मृत्यु वि० सं० १४८० (ई० सन् १४२३) में नागोर में भाटियों के साथ युद्ध में हुई थी। इनके १४ पुत्र थे।

---

१. बादशाही सेना के बार-बार पीछा किये जाने पर ये जोहियावाटी में जोहियों के पास जा रहे थे। जोहियों के मुखिया दल ने इनकी पहले दी गयी सहायता का स्मरण कर इनके सत्कार का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया। परन्तु, कुछ ही दिनों में इनके व जोहियों के बीच झगड़ा हो गया। उस युद्ध में ई० सन् १३८३ में ये लखबेरा गांव के पास वीरगति को प्राप्त हुए। रेऊ; मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० ५६; वीरमजी जोइयां सूं झगड़ो कर काम, आया जोईयावाटी में। बांकीदास री ख्यात, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, पृ० ६; नैणसी की ख्यात भाग २, पृ० ३०४; जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, पृ० ११३; वीरवांण, नं० ३३ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर पृ० १८।

२ उस समय मंडोर के राज्य में २४२ गांव थे। इनमें ८४ पर ईंदा पड़िहारों का, ८४ पर बालेसों का, ८४ पर असायचों का, ५५ पर मागलियों का और ३५ पर काटेचों का अधिकार था।

२. उस समय मंडोर पर मांडू के सूबेदार का अधिकार था। एक बार सूबेदार के एक अधिकारी ने पड़िहार राजपूतों से घोड़ों के लिये घास भेजने को कहलाया। ईंदों ने घास की १०० गाड़ियों में योद्धा छिपाकर भिजवा दिये। किले पहुंचने पर इन योद्धाओं ने उपस्थित सभी यवन-सैनिकों को मार डाला। इस युद्ध में चूंडाजी के भी आदमी थे। किले पर अधिकार करने के बावजूद पड़िहारों के लिये यवन-सेना से मुकाबला करना संभव नहीं था; अतः उन्होंने अपने मुखिया उगमसी की पोती चूंडाजी को ब्याही और उसके दहेज में मंडोर का किला प्रदान कर दिया।

इस आशय का सोरठा मारवाड़ में प्रसिद्ध है।

> ईंदारों उपकार, कमधज मत भूलो कदे।
> चूंडो चंवरी चाढ़, दी मंडोवर दायजे।
>
> रेऊ; मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० ६१

२. कर्नल टॉड ने चूंडाजी का पड़िहार नरेश को मारकर मंडोर पर अधिकार करना लिखा है (एनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, क्रुक संपादित) भाग १, पृ० १२०, भाग २, पृ० ९४४।

राव चूंडाजी के निधन के बाद राव कान्हाजी ज्येष्ठ न होते हुये भी उत्तराधिकारी बनाये गये। इनका जन्म ई० सन् १४०८ में हुआ था। राव कान्हाजी की मृत्यु के समय रिणमल्लजी के मेवाड़ में होने के कारण मंडोर की गद्दी राव सत्ताजी को दी गई थी। प्रशस्तिकार ने इन दोनों नरेशों का वर्णन नहीं किया है।

राव रिणमल्लजी (१४२८-१४३८ ई.) मारवाड़ नरेश चूंडाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म ई० सन् १३९२ में हुआ था। इन्होंने स्वर्णगिरीश के वंशजों में से सैंकड़ों राजाओं को मारकर भावी बदनामी के भय से कूप में डाल दिया (९१)। इन्होंने आक्रमण करके लौटते हुये फीरोजखान[1] को पराजित किया तथा उसके अनुज महमूद[2] को मार डाला (९२)। भाटी राजाओं[3] को पराजित करने के बाद जब उनका वध किया जाने लगा तो अनुनय-विनय एवं क्षमा मांगने के बाद राव रिणमल्लजी ने करुणार्द्र होकर उनको छोड़ दिया।

चाचा[4] और मेरा के द्वारा निष्कलक मोकल के मारे जाने पर राव

---

१. (अ) जिस समय मोकलजी ने नागौर के शासक फीरोज खाँ पर चढ़ाई की, उस समय राव रिणमल्लजी उनके साथ थे।

(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ७४)

(ब) ख्यातों में राव रिणमल्ल का इस समय नागौर पर अधिकार करना लिखा है।

२. यह गुजरात के शासक अहमदशाह का पुत्र था।

(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ७४)

३. राव चूंडाजी को मारने में जैसलमेर के भाटियों का भी हाथ था। इसका बदला लेने रिणमल्लजी ने उनके प्रदेशों को लूटना प्रारम्भ किया। वहां के रावल लक्ष्मण घबरा गये और उन्होंने दंड के रुपये देकर सन्धि कर ली। ई० सन् १४३० में राव रिणमल्लजी ने एक बार फिर जैसलमेर पर चढ़ाई की। इस पर वहां के महारावल लक्ष्मणजी ने एक चारण के द्वारा सन्धि प्रस्ताव भेजा और अपनी कन्या ब्याह दी। (रेऊ; मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० ७५)

४. ई० सन् १४३३ में मेवाड़-नरेश मोकलजी को उनके दादा महाराणा खेताजी की पासवान के पुत्र चाचा और मेरा ने मदारिया नामक स्थान पर मार डाला और चित्तौड़ के किले को घेर लिया। इस घटना की सूचना मिलने पर राव रिणमल्लजी ५०० वीरों के साथ मेवाड़ पहुंचे। उनके आने की सूचना मिलने पर चाचा और मेरा पाई कोटड़ा की पहाड़ियों में जा छिपे। ६ मास घेरा डालने के के बाद राव रिणमल्ल ने चाचा और मेरी को उनके साथियों सहित मार डाला।

(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ७६)

रिणमल्ल[1] ने दोनों को मारने की प्रतिज्ञा की और पर्वतों की गुफाओं में छिप जाने पर भी उनको ढूंढकर मारा और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य किया (९५)।

राव रिणमल्ल के अखैराज, जोधा, ऊदा, डूंगरसी, लाखा, मण्डल, माण्डल, करण, रूपा, चांपा, पाता, बालो, कांधल, सायर सभी पुत्र थे (९६)।

मोकलजी के पुत्र राणा कुंभकर्ण ने रात्रि में शयन करते हुये राव रिणमल्ल का वध कर दिया।

राव रिणमल्ल[2] के पुत्र जोधा को मेवाड़ छोड़कर इसी दुःख के कारण जगह-जगह भटकना पड़ा (९७)।

---

१. ख्यातों में लिखा है कि राव रिणमल्लजी ने मोकलजी के मारे जाने का समाचार सुनकर अपने सिर से पगड़ी उतारकर साफा बांध लिया था, और प्रतिज्ञा की थी कि जब तक हत्यारों को दण्ड न दूंगा, तब तक पगड़ी नहीं बाधूंगा।

२. राव रिणमल्ल के बढ़ते प्रभाव के कारण मेवाड़ के कुछ लोग इनसे नाराज रहने लगे। उन्हीं दिनों में मोकलजी के हत्यारे चाचा का पुत्र आका और पंवार महपा मेवाड़ लौट आए और रिणमल्लजी के विरोध करने पर भी लोगों के आग्रह से, महाराणा कुम्भा ने उनके अपराध क्षमा कर दिये। इसके बाद एक दिन महपा ने, रिणमल्लजी के मेवाड़ राज्य को दबा देने का भय दिखलाकर कुम्भा को भड़काया। युक्ति व्यर्थ जाने पर पुनः एक दिन महाराणा के पैर दबाते हुये रोने लगा। पूछे जाने पर उसने कहा कि राव रिणमल्लजी के मेवाड़ राज्य पर अधिकार कर बैठने के गुप्त षड्यन्त्र पर आपका ध्यान न देखकर मातृ-भूमि के दुःख से मेरे आँसू निकल पड़े हैं। यह सुनकर महाराणा कुम्भा उसके बहकावे में आ गये। उन्होंने राव रिणमल्लजी को धोखे से मारने की आज्ञा दे दी। जब इस षड्यन्त्र की भनक रिणमल्लजी को मिली तो उन्होंने जोधा आदि को बुलाकर सारी बातें बतला दीं। ई० सं० १४३८ की रात को बेखबर सोते हुए राव रिणमल्लजी को पलंग से बांधकर इनका वध कर डाला।

(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ०-७८)

२. वीर विनोद में इस घटना का १४४३ ई० सन् में होना लिखा है।

२. सूर्यमल्लजी मिश्रण ने राव रिणमल्ल का मोकल के समय मारा जाना लिखा है।
(वंश-भास्कर, भाग-३, पृ० १८७२) (यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती है)।

२. कर्नल टॉड ने भी मोकल के समय राव रिणमल्लजी का मारा जाना लिखा हैं।
(ऐनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान भाग-१ पृ० ३३२)

राव जोधा (१४५३-१४८९ ई० सन्) राव रिणमल्लजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म ई० सन् १४१५ में हुआ था। ये बड़े वीर एवं यशस्वी राजा थे। इन्होंने बहलोल के भाई सारंग खाँ को घोर युद्ध में मार डाला[1] :—

क्रोधाज्जूणपुरान्निवृत्य सहसा सारंगखानं निजं
भ्रातारं बहलोलसाहिरहितं तं हंतुमायोजयत्।
योधायोधवरोयुधायुधधरैर्युध्यंतमेनं बलात्
विक्रम्य व्यवधीद्यथा मृगपतिर्मत्तंमहावारणं ।।१०१।।

जोधा ने इससे पूर्व पितृ-श्राद्ध के कार्यार्थ गया[2] की यात्रा की। दिल्लीश्वर से अभय प्राप्त करके गया में लगने वाला यात्रीकर माफ करवाया। घोसुंडी[3] (मेवाड़) से प्राप्त महाराणा रायमल्ल के वि० सं० १५६१ (ई० १५०४) के लेख से भी इस बात की पुष्टि होती है।

---

१. (अ) उस समय हिसार पर बहलोल लोदी का अधिकार था और सारंग खाँ उसकी तरफ से प्रदेश की देखभाल करता था। जोधा का भाई कांधल सारंग खाँ के हाथों मारा गया। तब जोधाजी एवं बीकाजी ने आक्रमण करके सारंग खाँ को युद्ध में मार डाला।

(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृष्ठ १०१)

२. (ब) जोधपुर बसायां पछे गया री जात्रा नूं चढ़िया। मारग में जहानापुर रो मालक आय मिलियो, रावजी ऊणरी मदद किवी।

बांकीदास री ख्यात-पृष्ठ ७ (राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

२. ई० सन् १४६१ में राव जोधाजी ने गया की यात्रा की। उस समय मार्ग में आगरा पहुँचने पर राठौड़ कर्ण ने इन्हें बादशाह से मिलवाया। बाद में बादशाह को समय पर सहायता देने का वायदा कर यात्रियों पर लगने वाला शाही कर माफ करवा दिया।

(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृष्ठ १७)

३. "श्री योधक्षितिरुग्र खड्गधारा
निर्घातप्रहतपठाणपारशक्तिः ।।५।।"

पूर्वानतार्प्सीदगयया विमुक्तया
काँश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः ।।"

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग, ५६, अंक १, नं० २)

इसके आगे राव जोधा द्वारा जोधपुर[1] दुर्ग एवं नगर की स्थापना एवं जोधपुर की ललनाओं की मनोभिराम झांकी प्रस्तुत की गई है (१०२-१०४)।

राव जोधाजी[2] के २० पुत्र थे। प्रशस्तिकार ने जोधा के पुत्रों में—सूजा, विक्रम, वरसिंह, दूदा, रायपाल, कर्मसिंह, वणवीर, शिवराज, नींबा, बीदा, सामंतसिंह, भारमल्ल इत्यादि नामों का वर्णन करते हुये सूजा[3] का जोधपुर के सिंहासन पर राज्यासीन होना लिखा है। (१०५-१०७)।

इसी क्रम को भंग करते हुये बीकाजी द्वारा सुन्दर भवनों वाले बीकानेर नगर की स्थापना के बाद मेड़ता के राजा दूदा के पराक्रम एवं उनकी दान-शीलता का वर्णन किया है (१०८)।

क्षमावान् खींवसरेश्वर रायपाल हुये जिन्होंने अपने वीरों के साथ दुष्टों को समाप्त कर दिया (१०९)। शिवराज एवं सामंतसिंह के राज्यों के वर्णन के साथ द्रोणपुरेश्वर बीदा एवं बीडालसंज्ञपुर के राजा भारमल्ल की कीर्ति गाई गई है (११०)।

जोधपुर-नृप सूजा के बाद उसका पुत्र बाघा हुआ जो सूर्य के समान तेजस्वी था।[4] बाघा के पश्चात् गांगेयवत् कीर्ति वाला गांगा (१५१५-

---

१. नैणसी री ख्यात, जि० २, पृ० १३१; जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ४६; दयालदास की ख्यात, जि० १, पृ० १०९; वीर विनोद भाग-२, पृ० ८०६; ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-१, पृ० २४१।

२. रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ० १०३।

३. राव जोधा के ज्येष्ठ पुत्र नींबा की असामयिक मृत्यु से द्वितीय पुत्र जोगा गद्दी का अधिकारी बना था, लेकिन राजतिलक के समय तक वह नहाने धोने से ही निवृत्त नहीं हो सका; अतः सातल को गद्दी दे दी गई।
(रेऊ, मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ० १०४)
(प्रशस्तिकार का वर्णन सही नहीं है)

४. राजकुमार बाघाजी की इच्छानुसार उनके छोटे भाई शेखा ने अपना हक छोड़ अपने भतीजे वीरम को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की अनुमति दी थी। परन्तु सरदारों ने चुपचाप गांगाजी को गद्दी पर बैठा दिया। इससे शेखा गांगाजी से नाराज हो गया।
(रेऊ; मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ० ११३)

१५३२) हुआ जो बड़ा पराक्रमी एवं धनुर्धारी था। मुसलमानों[१] की भारी सेना को इन्होंने पूर्व में महाबली अर्जुन के भगदत्तकुंजर के दो टुकड़े करने के समान ही कीर्तिशेष कर दिया (११५)।

इसके पश्चात् गांगाजी के ज्येष्ठ पुत्र राव मालदेव (१५३२-१५६२ ई० अपने पिता की मृत्यु के बाद ई० सन् १५३१ में सोजत में गद्दी पर बैठ।

राजा मालदेव ने अपने बल से पृथ्वी के कई सामन्त और राजाओं को अपने बस में कर लिया। और अपनी राज्य-सीमाओं[२] का भारी विस्तार कर लिया। मालदेव प्रजा हेतु पिता के समान, कविजनों के लिये कल्पवृक्ष के समान, शत्रुओं के लिये (१६-१९) काल के समान थे।

राव बीका[३] का जन्म जोधपुर के स्वामी राव जोधा की सांखली रानी नौरंगदे से ई० सन् १४३८ में हुआ था। राव बीका के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र नरा[४] कुछ मास शासन करने के बाद ई० सन् १५०५ में मर गया। राव नरा के पश्चात् ई० सन् १४७० में राव लूणकर्ण का जन्म और ई० सन् १५०५

---

१. सम्भवतः प्रशस्तिकार का संकेत सेवकी गांव वाले युद्ध की तरफ है जिसमें नागोर के शासक खांजादा दौलतखां की सहायता से शेखा ने हमला किया था। इस युद्ध में शेखा मारा गया और दौलतखां पराजित होकर भाग गया था। यह घटना ई० सन् १५२९ की है।

२. हालांकि प्रशस्तिकार ने मालदेव के जीवन की विभिन्न विजयपरक घटनाओं का उल्लेख नहीं किया है फिर भी मालदेव द्वारा सीमा-विस्तार का जो चित्र कवि ने खींचा है वह सही है। वास्तव में राव मालदेव ने अपने जीवन में ५२ युद्ध करके छोटे-बड़े ५८ परगनों पर अधिकार कर लिया था। यही कारण है कि फारसी तवारीखों ने मालदेव के शौर्य एवं सीमा-विस्तार की भारी प्रशंसा की है। उनमें आईने अकबरी, अकबरनामा, तबकाते अकबरी, फरिश्ता, तुजुक जहांगिरी, मुन्तखबुल्लुबाब, म-आसिर-उल-उमरा इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

३. (क) दयालदास की ख्यात, जिल्द-२, पत्र १। (ख) मुंशी देवी प्रसाद, राव बीकाजी का जीवन-चरित्र, पृ० १। (ग) वीरविनोद भाग २, पृ० ४७८। (घ) देशदर्पण पृ० २३। (ङ) पाउलेट गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृ० १।

४. नरा का प्रशस्तिकार ने उल्लेख नहीं किया है।

को वह बीकानेर को गद्दी पर बैठा ।[1] तत्पश्चात् जैत्रसिंह[2], कल्याणमल्ल[3], रायसिंह[4] हुये । रायसिंह के तीन[5] भ्राता थे जिनके नाम क्रमशः—रामसिंह, सुरत्राण और पृथ्वीराज ने अकबर-नृपति से गागरोन[6] का किला प्राप्त किया था । खीचियों को युद्ध में पराजित किया था (१२२) ।

जोधपुर के शासक राव जोधा के अन्य भाइयों में राव दूदा (१५१५-१५४४ ई०) ने मेड़ता नगर को अपनी राजधानी बनाया था । दूदा भी बड़ा पराक्रमी था । उसने कुतुबखान को वक्ष चीर कर मार डाला तथा शिरिया-खान का भी वध कर डाला । उसके अनेकों पुत्रों में कन्दर्पवत् सुन्दर महा-धार्मिक राजा वीरमदेव (१५१५-४४ ई०) हुआ जिसने भरत के समान भ्रातृत्व का उदाहरण प्रस्तुत किया (२५-२६) ।

वीरमदेव का पुत्र जयमाल (१५४४-६८ ई०) बड़ा पराक्रमी था । रण-मंडल में जयश्री हमेशा उसका वरण करने को उत्सुक रहती थी । उसका चरित्र भीष्म युधिष्ठिरादि के समान ही स्मरणीय रहेगा । इसकी वीरता को

---

१. (क) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र ७ । (ख) मुंशीदेवी प्रसाद, राव लूणकर्ण का जीवन चरित्र; पृ०-४८ । (ग) वीरविनोद, भाग-२, पृ०-४८१ ।
२. राव जैतसी का जन्म ई० सन् १४८९ में हुआ था । (क) दयालदास की ख्यात पृष्ठ ९ । (ख) मुंशी देवीप्रसाद, राव जैतसी का जीवन चरित्र पृ० ६१ । (ग) वीरविनोद भाग-२, पृ० ४८२ । (घ) पाउलेट, गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट पृ० १२ ।
३. राव जैतसी के ज्येष्ठ पुत्र राव कल्याणमल्ल का जन्म ई० सन् १५१९ में हुआ था । राव जैतसी को मारकर बीकानेर पर राव मालदेव ने अधिकार कर लिया था । (क) दयालदास की ख्यात जिल्द २, पृ० १६ । (ख) वीरविनोद भाग-२, पृ० ४८४ । (ग) मुंशीदेवी प्रसाद, राव कल्याणमल्लजी का जीवन-चरित्र, पृ० ८२ ।
४. रायसिंह ई० सन् १५७४ में बीकानेर का स्वामी हुआ । (क) नैणसी री ख्यात, जिल्द २, पृ० १९९ । (ख) टॉड राजस्थान जिल्द २, पृ० ११३२ ।
५. राव कल्याणल्ल के १० पुत्र हुए थे । जिनके नाम—रायसिंह, रामसिंह, पृथ्वीराज, अमरसिंह, भाण, सुरताण, सारंगदेव, भाखरसी, गोपालसिंह, राघवदास । (क) दयालदास की ख्यात जिल्द २, पत्र २२-२३ । (ख) वीरविनोद भाग-२, पृ० ४८५ । (ग) मुंशी देवीप्रसाद, राव कल्याणमल्लजी का जीवन चरित्र पृ० १०८ । (घ) पाउलेट गजेटियर ऑफ बीकानेर स्टेट, पृ० २४ ।
६. नैणसी री ख्यात, भाग-१, पृ० १८८ ।

देखकर अकबर नृपति ने आगरा नगर के राजद्वार पर उसकी मूर्ति स्थापित की थी (१२७-२८)। इसके चतुर्दश पुत्रों का वर्णन निम्न प्रकार से है—(१) सुरतांण (२) शार्दूल (३) केशवदास (४) कल्याणदास (५) माधवदास (६) गाविन्ददास (७) रामदास (८) नारायण (९) विट्ठलदास (१०) नृसिंह (११) हरिदास (१२) मुकुन्द (१३) श्यामदास (१४) द्वारकादास (१२९-१३१)।

राव मालदेव[1] के बाद उनके गुणाभिराम पुत्र राम एवं बाद में उदयसिंह हुये। तत्पश्चात् रत्नसिंह और चन्द्रसेन हुये (वि० सं० १६१९-१६३७)। राव मालदेव ने उदयसिंह के छोटे भाई चन्द्रसेन को अपनी पत्नी के कहने में आकर मारवाड़ का राज्य प्रदान कर दिया। (३२-३५)।

दशरथ इव मालदेनृदेवो मृगनयनावशर्वात्तितामुपेत्य ।
फलविधिषु नियोजयाञ्चकारोदयनृपमग्रजनिं तनूजरत्नम् ।।३५।।

राव मालदेव के निधन के बाद उदयसिंह[2] और राम[3] दोनों ने चन्द्रसेन पर हमला किया। चन्द्रसेन ने राव राम से सन्धि कर ली और उदयसिंह से युद्ध किया। जिस स्थान पर यह युद्ध हुआ वहाँ पर भारी मात्रा में खून बहाया गया। तब से वह स्थान लोहावट नाम से प्रसिद्ध हुआ। युद्ध में दोनों भाई मूर्च्छित हो गये और बड़ो मुश्किल से किसी तरह जीवित बच गये (३६-४४)। तत्पश्चात् यवनाधिनाथ[4] से संधि करके उदयसिंह ने आक्रमण करके जोधपुर अपने वश में कर लिया (४८)।

---

१. राव मालदेव के २२ पुत्र थे। प्रशस्तिकार ने सबका विवरण नहीं दिया है।

२. राव उदयसिंह के अचानक गांगाणी और बावड़ी पर अधिकार करने से यह युद्ध हुआ था। सेनाओं का आमना-सामना लोहावट में हुआ था। विजय चन्द्रसेनजी के हाथ रही थी।
(रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १४८)

३. ख्यातों में लिखा है कि ई० सन् १५६३ में राव चन्द्रसेन ने अपने भाई राम पर चढ़ाई की थी। पहले राम ने मुकाबला किया फिर विजय की आशा न देखकर नागोर के हाकिम हुसेनकुली बेग के पास चला गया। दोनों ने संयुक्तरूपेण जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में रामसिंह को सोजत का परगना व हुसेनकुली को सारा खर्च देकर चन्द्रसेनजी ने संधि कर ली।

४. ई० सन् १५६४ में रामसिंह ने अकबर की सहायता से मुजफ्फरखां को लेकर जोधपुर पर आक्रमण किया और कई महीनों के घेरे के बाद किले पर कब्जा कर लिया। (क) रेऊ, मारवाड़ का इतिहास भाग-१, पृ० १५०; राठौड़वंश री विगत, पृ० १३। (ख) अकबर नामा; भाग-२, पृ० १९७।

मारवाड़-नरेश राव चन्द्रसेनजी के तीन पुत्र थे—(१) रायसिंह (२) उग्रसेन (३) आसकरण। जब राव चन्द्रसेन की मृत्यु हुई तो रायसिंहजी काबुल में तथा उग्रसेनजी बूंदी में थे; अत: आसकरणजी को गद्दी प्रदान की गई। उग्रसेन के लौटने पर सरदारों ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। कहते हैं कि एक बार दोनों[1] भाई चौसर खेलते हुये आपस में लड़कर मर गये (१५६)।

इसके बाद रायसिंहजी (१५८२ ई०) गद्दी पर बैठे और अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली (१५७)। तत्पश्चात् इन्हें जगमाल की सहायता हेतु अकबर ने भेजा। ये अर्बुदाधीश्वर के हाथों रणक्षेत्र में मारे गये।[2] (१५७-१५८)।

इसके बाद बादशाह अकबर द्वारा उदयसिंह (१५८३-१५९५ ई०) को मारवाड़ राज्य की गद्दी सौंपना एवं उदयसिंह द्वारा अपने भतीजे के वध का बदला लेने हेतु अर्बुदेश्वर राव सुरतांण पर चढ़ाई का वर्णन है, जिसमें राव सुरतांण ने दण्ड के रुपये देकर उदयसिंह से सन्धि कर ली थी।[3] (१६१-१६५)।

---

१. चौसर खेलते समय दोनों भाइयों में हार-जीत के विषय में संघर्ष हो गया। क्रुद्ध होकर उग्रसेनजी ने अपनी कटार आसकरणजी के छाती में घुसेड़ दी। परन्तु राव आसकरणजी के सरदार शेरवा ने, जो वहीं बैठा था, जब अपने स्वामी की यह दशा देखी, तब वही कटार उग्रसेनजी की छाती में घुसेड़ दी। इस तरह से दोनों भाई एक ही दिन स्वर्ग सिधार गये। यह घटना ई० सन् १५८१ की है।
(रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १६७)

२. मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा प्रताप का भाई जगमाल अकबर की अधीनता स्वीकार कर चुका था। शाही सेना भेजकर बादशाह ने देवडा सुरतांण को हटाने एवं सिरोही का अधिकार जगमाल को दिलाने हेतु कार्यवाही की। फलस्वरूप सुरतांण भाग गया और सिरोही पर जगमाल का कब्जा हो गया। किन्तु एक रात जगमाल और रायसिंहजी दताणी गांव के मुकाम पर बेखबर सोये हुये थे, तब सुरतांण ने अचानक हमला कर दिया। बिना शस्त्र के होने के कारण ये दोनों वीर रणक्षेत्र में मारे गये।
(क) (रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० १६८)
(ख) अकबरनामा, भाग-३, पृ० ४१३)

३. (क) अकबर नामा दफ्तर ३, पृ० ४३६-४३७
(ख) बांकीदास री ख्यात, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर पृ० २२

महाराजा शूरसिंह (१५९५-१६१९ ई०) मोटा राजा उदयसिंह के छठे पुत्र थे । इनका जन्म वि० सं० १६२७ तदनुसार ई० सन् १५७० की ५ अप्रैल को हुआ था ।[१] अक्षयराज, भगवतदास, नरहरिदास, जंनृसिंह, शक्तिसिंह, दलपति, माधोसिंह और कृष्णसिंह इनके भाई थे ।[२] सूरसिंहजी के अमात्य का नाम गोविंददास भाटी था जिसने समय-समय पर इनकी सेवा कर स्वामि-भक्ति का परिचय दिया था ।[३] (१६७-१७०)

सूरसिंह ने अनेक राजाओं की कन्याओं से विवाह किया; परन्तु किसी पुत्र के न होने से पुत्रेष्टि यज्ञ[४] किया और बाद में कछवाहा राजा दुर्जनशाल की बेटी सोभाग देवी के गर्भ से गजसिंह का जन्म हुआ । इस अवसर पर महाराजा ने स्वर्ण की वर्षा करके विद्वानों एवं गरीबों का दारिद्रय दूर किया था (१७०) ।

इसके बाद मेड़ता[५] एवं सोजत के राजाओं को अपने अधीन किया (१७१) ।

मुजफ्फर के ज्येष्ठ पुत्र साहि बहादुर ने गुजरात प्रदेश में उपद्रव शुरु किया था । अतः बादशाह अकबर ने महाराजा शूरसिंहजी को गुजरात[६]

---

१. अकबर नामा, भाग-३, पृ० ६९७ ।

२. महाराजा उदयसिंह के १६ पुत्र थे जिनमें से ८ का वर्णन प्रशस्तिकार ने किया है ।

३. महाराजा अधिकतर युद्धों में उलझे रहने के कारण बाहर रहते थे । अतः उस समय जोधपुर का सारा प्रबन्ध भाटी गोविन्ददास एवं कुंवर गजसिंह के हाथों में रहता था । भाटी गोविन्ददास महाराजा के साथ कई अभियानों में रहे । अन्त में राजा किशनसिंह ने इनके घर पर हमला कर इनको मार डाला । हालांकि किशनसिंह को इस अभियान में प्राणों से हाथ धोना पड़ा ।

४. रेऊजी ने लिखा है कि गुजरात और दक्षिण के प्रांतों में महाराज को बहुत-सा द्रव्य मिला था । इससे जोधपुर पहुंच कर इन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया ।
(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १८५)

५. रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० १८५, १८७

६. अकबरनामा, भाग-३, पृ० ६९७; मारवाड़ के इतिहास में रेऊ ने लिखा है कि मुजफ्फर के ज्येष्ठ पुत्र बहादुर ने कुछ लोगों को लेकर गुजरात में लूटमार की थी । महाराज उसे दण्ड देने हेतु अहमदाबाद से रवाना हुये । इनको दल-बल

(पृष्ठ का शेषांश ८७ पर)

भेजा। महाराजा से थोड़ी-सी मुठभेड़ के बाद साहि बहादुर भाग गया। गुजरात प्रदेश के उपद्रव शान्त करने के बाद इन्हें दक्षिण भारत[1] में खानखाना के साथ भेजा गया। वहां पर इन्होंने शाहि निजामुल-मुल्क एवं हब्शियों को पराजित किया (१७९-८२)।[2] निजामुल-मुल्क के साथ युद्ध-प्रसंग में सूर्यास्त एवं प्रातःकाल का वर्णन प्रसंगानुकूल किया गया है।

शूरसिंह द्वारा प्रातःकालीन (भगवान की) स्तुति के बाद पुनः युद्ध का का वर्णन है जिसमें कवि ने अपना काव्य चमत्कार दिखाया है। (१८८-२०७)।

इसके बाद अकबर से अवकाश प्राप्त शूरसिंह द्वारा अपनी राजधानी के प्रति प्रस्थान को चित्रित किया गया है (२१०)। महाराजा के मारवाड़ आगमन की खुशी में नगर के चतुष्पथों को सजाया गया, मंगलमय तोरण बांधे गये और मंगल गीत एवं वाद्यों से उनका स्वागत—सम्मान किया गया। (२११-२१२)।

(पृष्ठ ८६ का शेष भाग)

सहित आते देखकर बहादुर की हिम्मत टूट गई और थोड़ी-सी मुठभेड़ के बाद वह भाग गया; सूरज प्रकाश भाग १, पृ० २७५; डॉ० गौरीशंकर ओझा कृत जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-१, पृ० ३६४-३६५; पं० रामकरण आसोपा कृत मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० ३२५-३२६; गजगुणरूपक-बन्ध राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर पृ० १६।

---

१. अकबरनामा में लिखा है कि हब्शी खुदावंदखां ने पाथरी और पालम के प्रांतों में उपद्रव शुरु किया था। सूचना मिलने पर खानखाना ने राजा सूरसिंह को भेजा। इस पर खुदावंद को हराकर महाराज ने वहां शान्ति स्थापित की।
(भाग-३, पृष्ठ ८०६)

२. रेऊ ने लिखा है कि जिस समय सूरसिंहजी निजामुल-मुल्क के सेनापति अम्बर चम्पू से लड़ने चले तब हब्शी फरहाद भी अपने तीन हजार सवारों के साथ युद्ध में कूद पड़ा। यह घटना ई० सन् १६०२ की है।
(रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १८४); तुजुक-ए-जहांगिरी (पृ० ७४ अनुवादक-व्रजरत्नदास); वीरविनोद, भाग-२, पृ० २९६; ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-१, पृ० ३७१; गजगुणरूपकबंध, ग्रन्थाक ९९ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ० ३३, तथा सूरज प्रकाश, भाग-१, पृ० २८१ में सूरसिंह के दक्षिण गमन व युद्ध की पुष्टि है।

ई० सन् १६०५ में बादशाह[1] अकबर की मृत्यु पर उसका पुत्र जहांगीर के नाम से गद्दी पर बैठा। उस समय बहादुर ने गुजरात में पुनः उपद्रव किया। इससे राजा शूरसिंहजी को वहां पुनः जाना पड़ा। वहां पर उपद्रव को दबाने में उन्होंने अच्छी वीरता प्रदर्शित की (२२६-२२७)। इसके अनन्तर कवि को वंश-प्रशस्ति के साथ काव्य की समाप्ति होती है।

पुराणकालीन शासकों के क्रम में राष्ट्रकूटों के राव सीहा से सवाई राजा शूरसिंह तक निरन्तर लड़े जा रहे युद्धों की नीरस पुनरावृत्ति से विकल मानवीय मन को रिझाती हुई प्रकृति की मनोहारिणी घटाओं के चित्र-विचित्र वर्णन के गुम्फन में कहीं पर परभृतों का कमनीय कलरव, षट्पदों का मधुर-गुञ्जन, कोमलाङ्गियों का हास-परिहास, हाटों व चतुष्पथों के मनोहारि-विन्यास से वीररस-परक वातावरण में रसों का समावेश करते हुये अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, अर्थान्तरन्यास और सन्देहादि विविध शब्द एवं अर्थालंकारों की योजना में सामान्यतया सरल भाषा व कहीं-कहीं पर क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से राजस्थान के मध्यकालीन व विशेषरूपेण मारवाड़ के ऐतिहास काव्यों की परम्परा में, प्रस्तुत शूरसिंह वंश-प्रशस्ति का इतिहास के साथ ही अपना अलग स्थान है, हालांकि काव्यगत विशेषताओं, शैली तथा रस के अन्य उपकरणों की चर्चा को काव्य के ऐतिहासिक पर्यालोचन के सिलसिले में वाञ्छित स्थान नहीं मिल पाया है। वैसे भी वह अध्ययन का एक अलग ही पहलू है।

परन्तु यदि मारवाड़ के इतिहास के पुनः संकलन के प्रयत्नों में आधारभूत पर्शियन और राजस्थानी स्रोतों के साथ उपलब्ध संस्कृत काव्यों का पुनरावलोकन करना है तो उसका आरंभ हमें सूरसिंह वंश-प्रशस्ति से ही करना होगा क्योंकि जहां यह काव्य संस्कृत-कवियों की इतिहास पराङ्मुखता के खण्डन में अपने आपमें, अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करता है, वहीं पर इसका इसलिये भी महत्त्व द्विगुणित हो जाता है कि मारवाड़ में सस्कृत भाषा में इतिहास लेखन का प्रारंभ यहीं से माना जायेगा।

१. रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग-१, पृ० १८५।

श्रीगणेशाय नमः

संचारा इव सैकतं सुविमलं बिंबा यथा दर्पणं
वाता वारिनिधिं शिलोच्चयशिलां धाराभिसारा इव ।
सद्वृक्षं तरुणा घुणा इव गुणा यं चित्रयंत्युद्धता
नित्यानंदघनं मनःप्रशमनं तं कंचिदाशास्महे ।।१।।

लिम्पन्तं कज्जलाद्रिप्रतिमनिजवपुर्नीलभासा दशाशा
नासाश्वासावधूतप्लवगकिलकिला कृतकौतूहलाभम् ।
दृष्ट्वोच्चैः कुंभकर्णं समितिसपुलको विस्मयस्मेरभाजः
कल्याणं कल्पयन्तां रघुतिलकमणेर्लब्धलक्षाः कटाक्षाः ।।२।।

गौरनीरधिजनिस्तनांतरे नीलिमानमनुविवितं निजम् ।
उत्तरीयकधियापहस्तयन् भूतयेस्तु हसितो हरिस्तया ।।३।।

वंजुलावलिनिकुंजलालसं लालसं नवतमालसन्निभम् ।
वल्लवीनयनपल्लवीवशं हा दृशं श्रयतु तादृशं महः ।।४।।

स्मरचारुणाधररुचारुणायितस्मितशालिनालिवनमालिनाधुना ।
भ्रमरस्तु तेन मतिरस्तु तेन मे महसाद्भुतेन सहसावभासिता ।।५।।

अनुवेनुनाट्यचटुलेण नादिनीं शुचिहासिनीं मरकतावभासिनीम् ।
क्वचनात्मनैकरचनादुदंचिनीं सुचिरं चिरं चिनु विरंचिवंचिनीम् ।।६।।

आभीरसुंदरीणां चीराणि हरन् हरिर्जयति ।
द्रुपदसुतायै दातुं रचयन्निव संचयं चारु ।।७।।

उन्नीय नीयमानो जयति तृणावर्त्तदितिजेन ।
तोयावर्त्तविवर्त्तितकुवलयमिव कालियारातिः ।।८।।

उदयदरुणरश्मी यंति पद्माकराब्जे
सुरमुकुटसमूहे पद्मरागांशुभासः ।
मुनिनयनचकोरानंदनाश्चंद्रभासो
बलिविजयिनखानां कांतयस्ता जयंतु ।।९।।

संसारापारवारां निधिचललहरीमज्जनोन्मज्जनार्तान्
श्रांतानालोक्य लोकांश्चिरमिह सुदृढं कर्मपाशावलीढान् ।
देवः श्रीमाननंतः स सदयहृदयो नाम विश्रामहेतोः
स्वेधाम्न्याधाय विश्वं भुजगमणिफणा भोगशायी पुनातु ।।१०।।

क्रीडाकौतुकिन: प्रभो पुनरिदं सम्यक् सिसृक्षोर्महा—
मायाजालममुष्य कल्पितवृत: प्राग्वासनोल्लासना: ।
ततुस्तूर्णमिवार्णनाभसदनाद् गंभीरनाभीह्रदात् ।
देवस्या[1]विरभूद्विभूतिभवनं नालं गुणालंबनम् ।।११।।

पद्मं प्रादुरभूत्तत: समभवत्तस्मादकस्मादथो
देव: कश्चन्[2] विश्रुत: स तु चतुर्वक्त्र स्वयंभूरिति ।
अंतर्नालमिहालमाकलयत: कालो विशालोऽगमत्
गूढं मूलमनाप्य तस्य स तदा रूढो विमूढोऽभवत् ।।१२।।

ध्यानेनाधिगतेन तेन स पुनर्नारायणेन स्वयं
निर्द्दिष्टस्त्रिजगद्विधानविधये वेधा विधां नाध्यगात् ।
चिंताचंचलचेतसोस्य समभूत्सूनुर्मुनिर्मानस:
तं दृष्ट्वा स तु संप्रहृष्टवदन: सृष्ट्यै समायोजयत् ।।१३।।

मरीचेर्वैरंचेरपि विमृशत: सजनविधिं
मनस्त: संजातोखिलजनजनि: कश्यपमुनि: ।
समाज्ञप्त[3] सर्गं स निजजनिकेनेह बहुश:
तदर्थं धातार परिचरितवान्नान्यशरण: ।।१४।।

पदांगुष्ठाद्वामादज नितनुजा काचन विधे:
अकस्मादन्यस्मादपि सपदि दक्ष: समभवत् ।
स तस्यां पंचाशद्दश च जनयामास तनया—
श्चतस्र: प्रायच्छन्नव च ननु मारीचमुनये ।।१५।।

ततस्तासु प्राप्तैरति समुदयं कश्यपमुने: ।
विचित्रै: संतानै: सकलजगदंडं वृतमभूत् ।
अमुष्यंद्रापेंद्रप्रसवभुवि दक्षस्य दुहित-
र्यदित्यामादित्यो दशशतमरीचि: समजनि ।।१६।।

य: श्रीमानंधकाराजगरनिगलितानाकलय्येह लोकान्
कोकाश्चोद्भूतशोकान्मनसि धृतदय: पद्मनिश्छद्मबंधु: ।
अग्र जाग्रत्सुपर्णाग्रजनिरुदयतो द्योतयन् दिक्प्रदेशान्
एष प्रत्यक्षदेवा जयति दिनपतिर्देवदेवाधिवंद्य: ।।१७।।

---

१. द्वेवस्य २. कश्चन
३. समाज्ञिप्त

तत्सूनुः श्राद्धदेवः समजनि तनुजोऽस्मान्मनुर्नामराज्ञा—
माद्यः प्रोद्यत्प्रतापः स किल रचितवान् राजधानीमयोध्याम् ।
इक्ष्वाकुक्षोणिपालः क्षुतजवविवृतघ्राणरंध्रादमुष्य
प्रादुर्भूतस्ततो भूतिक्षितिपतितिलको व्यूढवक्षा विकुक्षिः ।।१८।।

तत्सूनुर्वृषपर्वमवासवमहावाहश्चरन्नाहवे
यच्छत्रूनजयत्पुरंजय इति ख्यातः ककुत्स्थोऽभवत् ।
तस्याप्यंगजनेरनेन स इलापालादभूद्विश्वतो
विख्यातः खलु विश्वगंधिरभवत्तस्मादपींद्रः सुतः ।।१९।।

तस्माद्बभूव युवनाश्व इति प्रसिद्धः सावस्तिरित्यभवदस्य तनूजरत्नम् ।
यो वासयद्वसुसमो निजनामधेयां सावस्तिरित्यनुपमां नगरीं गरीयान् ।।२०।।

तस्यांगजोऽपि बृहदश्व इति प्रपेदे पुत्रं नृपः कुवलयाश्वमयं महौजाः
धुंधुं मृधे यदवधीदिति धुंधुमारः ख्यातः क्षितौ क्षितिपतिः क्षमिणां
वरेण्यः ।।२१।।

तस्माद्दृढाश्व इति नाम महीश्वरोभूद्धर्यश्व[1] इत्यथ ततः समभून्निकुंभः ।
तस्यार्हणीयचरितोऽजनि बर्हणाश्व तस्मात् कृशाश्व इति सेनजिदास
तस्मात् ।।२२।।

तस्यासीद्युवनाश्व इत्यवनिभृद्वंद्यांघ्रिपीठस्ततो
मांधाताखिलचक्रवर्तितिलको जज्ञ धराधीश्वरः ।
तस्यासीत्पुरुकुत्सनामनृपतिस्तस्मादभूदच्युतो—
द्यत्कीर्त्तिस्त्रसदस्युरित्यथ सुतस्तस्यानरण्यो[2]ऽभवत् ।।२३।।

हर्यश्वः प्रवणास्त्रिबंधन इतः सत्यव्रतोऽभूत्क्रमात्
पुत्रो य कथितस्त्रिशंकुरपितत्सूनुः सतामग्रणी ।
राजा राजशिरोमणिः किल हरिश्चंद्रः स यः कौशिक--
क्रोध-क्लेश-महार्णवे निपतितो धीरः पदं नाचलत् ।।२४।।

तस्यासीदनु रोहितोऽनुहरितश्चंपस्ततो यः पुरीं
चंपां प्रागकरोत्सुदेव इति तत्सूनुर्नृदेवोत्तमः ।
सोदेवो विजयस्ततोपि भरुकस्तस्माद्वृको बाहुकः
तत्पुत्रः सगरः सुतोऽभवदतो यश्चक्रवर्त्तीश्वरः ।।२५।।

---

१. र्यश्व । २. नरण्यो ।

तत्सूनोरसमंजसात्समजनि प्रोद्यत्प्रतापोंऽशुमां—
स्तस्मादप्यवनीपतेः कुललसद्दीपो दिलीपोऽभवत् ।
तस्मादास भगीरथःस कपिलक्रोधानलज्वालया
निर्दग्धाननयद्दिवं निजपितॄनानीय यो जाह्नवीम् ।।२६।।

ब्रह्मांडादपि दूरतःप्रसृमरीचित्रं पवित्रीकृत—
त्रैलोक्या मुनिदेवमानवजनैः संस्तूयमानाऽनिशम् ।
कीर्तिःमूर्त्तिमतीव शीतकिरणस्वच्छा चिरस्थायिनी
यन्नाम्नामरनिम्नगाभगवती भागीरथी गीयते ।।२७।।

तस्माज्जातः श्रुत इति सुतो विश्वतो विश्रुतोऽसौ
नाभस्तस्मादपि समभवत्पद्मनाभप्रभावः ।
सिन्धुद्वीपस्तदनु तनुजोस्यायुतायुस्ततोऽभूत्
प्राग्वर्णोपूपहितकनको राजराजतु पर्णः ।।२८।।

सुतस्ततोभूदथ सर्वकामः सुदामनामानु ततोऽश्मकोभूत् ।
धर्मस्य मूलं किल मूलकोस्मात्ततोऽभवत्पंक्तिरथः समर्थः ।।२६।।

तस्मादभूद्दलविलोऽनु विश्वं सहेश्वरो विश्वसहस्ततोऽभूत् ।
खट्वांगनामानु च दीर्घबाहुस्ततोऽनघश्रीरघुराविरासीत् ।।३०।।

यो नासादितयौवनःसमजयज्जंभद्विषं संगरे
विप्रेभ्यो व्यतरद्युवाखिलवसुप्राग्विश्वजित्यध्वरे ।
यस्मादोंकृतकौत्सयाचितगुरुद्रव्योच्चयान्निःस्वतो
भीतः कोशमपूरयन्निशि धनाधीशोपि चामीकरैः ।।३१।।

अजस्तदीयस्तनुजस्ततोऽभूद्भूमीपतिः पंक्तिरथाभिधानः ।
ततश्चतुर्द्धावततार रक्षःकुलांतकालोऽखिललोकपालः ।।३२।।

बद्धो येन महोदधिर्युधि हतः त्रैलोक्यविद्रावणः
कैलाशोद्धरणक्रियोद्धुरकरक्रीडोबलाद्रावणः ।
रामोधर्मधुरंधरो मरकतश्यामावदातद्युति
यो लोकस्थितये ऽत्यजत्प्रियतमां वह्नौ विशुद्धामपि ।।३३।।

कुशावतीशोथरिपुद्विपांकुशः कुशेशयाक्षः कुशलोऽभवत्कुशः
ततोतिथिर्योतिथिपूजनप्रियो द्विषां निषेद्धा निषधोऽभवत्ततः ।।३४।।

ततोनलोभूदनलप्रकाशो न लोभमोहादिभिराश्रितो यः ।
कीर्त्तीन्दुपाण्डुः किल पुंडरीकः विलोचनोऽभूदथ पुंडरीकः ।।३५।।

क्षत्रेशः क्षेत्रधन्वान्वजनि निजयशः क्षिप्तनक्षत्रनाथो
देवानीकस्ततोभूत्तदनु नृपवरोऽह्नीन गुर्गां शशास ।
तस्यासीत्पारियात्रः परदलदलनोऽस्माद्दलोनाम तस्माद्
अर्क्कः[1] आसीत्क्षितिपतितिलक कर्कशार्कप्रतापः ।।३६।।

सुतस्ततो वज्रधरप्रभावो बभूव भूपः किल वज्रनाभः ।
सदग्रगण्यः सगणो गुणानां गुणैरुदारः समभूत्सुतोऽस्मात् ।।३७।

धृतिमानवनीभृतां वरेण्यो विधृतिर्नाम वसुंधराललाम
सगणादवनीपते सुतोऽभूद्विधृतोंऽगजनिहिरण्यनाभः ।।३८।।

पुष्यस्ततोऽभूत्ध्रुवसंधिरस्मात्ततोऽभवस्तस्य सुदर्शनाह्वः
तदंगजोऽनंगसमांगकांतिर्जातो जगत्याः पतिरग्निवर्णः ।।३९।।

काश्चिद्देव्य इव स्वकीयवदनान्यादाय शीतद्युतीन्
काश्चिच्चाप्सरसो यथाधरपुटेस्वाधाय साध्वीं सुधाम् ।
काश्चित्कल्पलता इवास्य मनसः कामानदुः स्वः सुखं
भुञ्जन्नत्र समूर्त्तमन्मथसमः शृङ्गारसारोऽभवत् ।।४०।।

तनुजवदनपद्मालोकनानंदहीने गतवति सुरसद्माखंडसौख्यानि भोक्तुम् ।
प्रकृतिभिरिह शीघ्रं गर्भ एवाभिषिक्तः समभवदवनीशः शीघ्रनामा—
सुतोऽस्य ।।४१।।

ततो मरुप्रस्नुयुतोऽनुसंधिरमर्षणोस्मादभवत्सहस्वान् ।
ततस्तनूजोऽजनि विश्वसक्तः प्रसेनजित्तस्य च तक्षकोऽस्मात् ।।४२।।

बृहद्बलस्तस्य बृहद्रणोऽस्मात् गुरुक्रियस्तस्य च वत्सवृद्धः ।
प्रीतिप्रदः प्रीतिपदादिरस्माद् व्योह्वमायो भानुरनु क्षितीशः ।।४३।।

तद्विश्वकस्तस्य च वाहिनीपतिस्ततो नृदेवः सहदेव इत्यभूत् ।
वीरस्तु तस्माद्बृहदश्वसञ्ज्ञकस्ततोऽनुभूपोजनि भानुमानिह ।।४४।।

ततः प्रतीकाश इति क्षमापतिस्तत्सुप्रतीको मरुदेव इत्यतः
ततः सुनक्षत्र नृपोऽथ पुष्करस्ततोंतरिक्षः सुतपा अमित्रजित् ।।४५।।

ततो बृहद्भानु नृपोऽथ बर्हिः कृतंजयोऽस्माच्च रणंजयोऽस्मात् ।
तत्संजयः श्राय इतोऽनुतस्माच्छुद्धोद इत्यस्य च लांगलोऽभूत् ।।४६।।

---

१. अर्कः सूदकर्क ।

प्रसेनजिदतोऽभवत्तदनु भूपतिः क्षुद्रक—
स्ततोऽरुणक इत्यभूत्सुरथ संज्ञकस्तत्सुतः ।
सुमित्र इति भूभुजां सुचिरराजधानोपदं
पुरीपरमशोभनाधिगतवत्ययोध्याभिधा ।।४७।।

वंशेस्याविरभूद्बलिः स बलवान्विख्यातवीर्यः क्षितौ
क्षोणीशः क्षणभंगुरां श्रियमयं जानन्वदान्योऽभवत् ।
यस्योद्दंडभुजप्रतापपटिमप्रध्वंसितं प्रौढिम—
प्रह्वाः पादतले प्रथेतुरवनीपालाः परे पद्मशः ।।४८।।

जित्वा दिशः स्वः सकलाः किल चक्रवर्त्ती
चक्रेश्वरीचरणपंकजजातभक्तिः ।
कार्णाटनीवृति चकार निजं निवासं
पृथ्वीं शशास तदनु प्रथितः पदार्थः ।।४९।।

तस्मादभूद्ज्ञानपतिः पृथिव्याः पतिस्ततश्चाजनि तुंगनाथः
प्रोत्तुंगमातंगकपोललालद्विरेफसंगीतकसेवितश्रीः ।।५०।।

जातस्तस्यानुभूपो भरतनृपतिश्चक्रवर्त्ती समस्त—
त्रस्तद्वीपावनोपा नतसुभगपदः पद्मनाभप्रभावः ।
कार्णाटेशः सकर्णादधिकवितरणेऽभ्यर्णमाकर्णनीयो
यद्भर्तुः सैन्यभारान्कथमिव बिभरामास विश्वंभरापि ।।५१।।

शेषाशेषफणाश्चलद्बलमहाभारैरयं नामयन्
प्राचीप्रत्यचलच्चलाचलचयन्व्याप्तांचलां चालयन् ।
नानादानवितानमानितमहादेवः पितृप्रीतये
धातुं श्राद्धविधिं गदाधरपदाक्रांते गयामूर्द्धनि ।।५२।।

भोक्तव्यैर्नव्यगव्यादिभिरमरपितॄन् प्रीणयन् हव्यकव्यै—
र्भव्यै सव्यापसव्यं विधृतनवगुणैरव्ययश्राव्यकीर्त्तिः ।
दातव्यद्रव्यपुञ्जव्ययविदितमहोदेवनिर्व्याजसेवः
स्थित्वा कालं कियंतं तदनु निववृते तद्गयानामधाम्नः ।।५३।।

मंदाकिनीविशदवीचिविराजमानं स्थानं निरीक्ष्य पथि पूर्वजभुक्तपूर्वम् ।
स्नेहप्रमोदितमनाः कणवज्जनाम वासाय स व्यरचयन्नगरी ललाम ।।५४।।

ब्रह्मद्रवेन सुरनिम्नगया सदार्द्रं राष्ट्रंवर यदिति तेन तदा शशंसे ।
ख्यातास्ततःप्रभृति राष्ट्रवरास्तदीया अद्यापि लोककृतरट्ट—
वराभिधानाः ।।५५।।

कोटिशः प्रमदकुंजर पुंजप्रान्तगुंजदलिमंजुलगीतैः
कूजितां श्रियमितः परिभुंजन्पुंजराज इति भूपतिरासीत् ॥५६॥

तस्यासतु सुतवरौ जितलोभदंभौ संग्रामदारितविपक्षकरीन्द्रकुंभौ ।
धात्रा कृतौ प्रकटबाहुबलोपलंभौ स्तम्भौ धराधरणि कर्म्मणि—
धर्म्मवंभौ ॥५७॥

याभ्यामदायि सकलः किल गुर्ज्जराणां देशः परेशमपहृत्य निजानुजायै ।
येषां स्वधर्मवति कर्मणि शर्मधर्मा जन्मान एव किल संप्रति—
कान्यकुब्जाः ॥५८॥

इति सूरसिंहप्रकाशे माधवभट्टकृतौ प्रथमः सर्गः ॥१॥

वंभादभूदजयचन्द्र इति क्षितीशस्तस्मान्नृपः सुभटराज समाह्वयोऽभूत् ।
तस्यांगजो विजयचंद्र इतो नु चक्रवर्त्ती महानरपतिर्जयचंद्र—
आसीत् ॥५९॥

यः सर्वाः ककुभोऽजयद्दलभरैरस्यावनि पूरिता
तन्नाम्नादलपंगुरित्ययमभूद्गन्तुं भुवो भावतः ।
सन्नद्धाः समपालयंश्च परितः प्रासाद्मत्युत्कटा
लक्ष्याशीतिभटानयेन न भये नेत्यन्वहं श्रूयते ॥६०॥

आरेभे राजसूयं स किल कलियुगक्रूरकालेऽपि मत्वा
सर्व्वोर्व्वीशान्स्ववश्यां निखिलवसुमतीमंडलाकृष्टलक्ष्मीः
इन्द्रप्रस्थाधिपस्तं रुचिरमवसरं वीक्ष्य विख्यातवीर्यः
पृथ्वीराजः समंतात्सपदि विघटयामास देशानमुष्य ॥६१॥

दीक्षाकंकणबंधसुंदरकरः कल्याणतूर्यस्वना—
नुच्चानप्यभिभूय कर्णकटुकान् शुश्राव दीनारवान् ।
आ किं के कथमित्यनेन कथितो दिल्लीश्वरो[1] यद्गुता—
लोकालोकमहेश्वरेत्यनुचरा विज्ञापयांचक्रिरे ॥६२॥

काऽयं किन्नोक्तपूर्वः किमिव न विजितः कथ्यतामित्थमुक्ताः
क्रुद्धं युद्धाय बद्धा युधमवनिपतिं मंत्रिणः कंपमानाः ।
प्रोचुः प्रह्लास्त्रिलोकीतिलकनरपते त्वत्पुरः कः पुरारि—
र्जंभारिर्वा विजेतुं किमिह कतिपयग्रामनाथे प्रकोपः ॥६३॥

---

१. डिल्लीश्वरो ।

अस्माभिर्यदुपेक्षितोऽग्निकणवद्वृद्ध स तूलोच्चय—
प्रायेणैवृत्ति दीक्षितस्य भवतो यात्रा तु नात्राहति ।
अन्यैर्जेतुमशक्य इत्यधिगतं संप्रत्ययं सत्ववां —
स्तस्मादस्मदुदीरितं कलय यद्युक्तं ततस्तत्कुरु ।।६४।।

पुत्र्यास्ते रचय स्वयंवरमहं संयोगितायास्ततः
पृथ्वीराज इतः पराक्रमनिधिः प्रायः समायास्यति ।
ज्ञात्वा निह्नुतचिन्हमाकृतिगुणैस्तन्निग्रहं निग्रहे
कृत्वा सत्रममुं समापय महाराजाधिराज प्रभो ।।६५।।

तैरेवं कृतसांत्वनस्तदकरोद्दिल्लीश्वरोऽपि स्वयं
श्रुत्वा को नृपतिः स्वयंवरमहं संभावितस्तिष्ठति ।
इत्यालोच्य स वंदिनोनुचरतां गत्वा निजस्य छलात्
तत्रायं वरदायिनः किल कवेश्चंद्राह्वयस्यागमत् ।।६६।।

सत्रे नृपान्निखिलकर्म्मकरान्निरीक्ष्य संयोगिता न चकमे कमपि क्षितीशं
दिल्लीपतिः स तु जहार ततः समंतासात्मंतषोडशकसंवृत—
एणनेत्राम् ।।६७।।

न शेकुस्तं रोद्धुं गरुडमिव देवा नृपसुतां
सुधां नीत्वा यातं झटिति जयचन्द्रस्तु नृपतिः ।
समंतात् सामंतात्समिति समुपेत्यास्य गरुतः
प्रचिच्छेदाकार्षीत्सुरपतिरिवैनं च निजसात् ।।६८।।

दिल्लीशमुद्दिश्य निजाधिनाथमभ्यर्थितः कातरया कुमार्या
मुमोच दत्वा बहुपारिबर्हं समापयामास ततः स्वसत्रम् ।।६९।।

तस्मादभूत्तादृश एव वीरो जेता रिपूणां जयसेन नाम ।
सुतस्ततः पूरितसर्वकामः कामाभिरामः किल सीतरामः ।।७०।।

स्तंभादिवाविरभवन्नरसिंहमूर्त्तिः
तस्मात्स सिंह इति सिंह इवावभासे ।
बोभत्सिनीं शवभरैः[1] परकुंभिनां यो
विश्वंभरामिह चिरं बिभरांवभूव ।।७१।।

१. शवभरैः ।

द्वारकामन्वगादेष[1] गत्वा हरिद्वारकांचीमुखाः सर्वशोऽन्याःपुरीः ।
द्वारकल्पामिह श्रेयसामुच्छलद्द्वारिकाप्रस्थलीमंबुधेः कर्हिचित् ।।७२।।

आगच्छन्निह केनचिद्रिपुभयाच्छोलंकिनाभ्यर्थितो
मार्गेऽसौ मरुपत्तनाधिपतिना दत्ताभयस्तद्रिपुम् ।
यातो योजनविंशतिं प्रजविभिर्वाजिव्रजैर्यमितो
जाडेचान्वयजं जघान निशितं लाखाभिधानं युधा ।।७३।।

प्रत्यावृत्य ततश्च पत्तनमयं तेनैव शोलंकिना
दत्तामात्मभुवं मुदा व्युदवहल्लावण्यलक्ष्मीनिधिं ।
त्रीन्पुत्रप्रवरानतः प्रसुषुवे सास्थान नामाग्रजो
मध्यः शोनिग आस वासरसमस्ताभ्यामजश्चानुजः ।।७४।।

शंखोद्धारधराभुजोऽजनृपतेर्वाढ़ेल संज्ञाः सुताः
आसन्नीडरपत्तनाधिपतयस्ते शोनिगस्यांगजाः ।
आस्थानस्तु निहत्य गोहिलगणान्जग्राह खेडं पुरं
खेडेचा इति तन्मरुक्षितिभुजः ख्याताः क्षितौ तद्भवाः । ७५।।

आस्थानोर्व्वीधारिणो धूहडोऽभूत्
कार्णाटेभ्यश्चक्रदेवी स्ववासं ।
नागाणं यत्पत्तने तेन नीता
नागाणेची गीयते तेन लोकैः ।।७६।।

तस्मादाविरभूत्तनूजनिमणिः श्रीरायपालो नृपः
ख्यात क्षोणितले स एव सुभटैर्वेल्लन्महीरेल्लणः ।
येनामंदमतिः स चंदनवचाश्चंदः स्वराज्यार्पणा—
द्भाटी यादववंशजः कविवरश्चक्रे निजश्चारणः ।।७७।।

चन्दान्ववाय जाता वश्यगिरोऽद्यापि ते कवयः ।
रोहडिया इति विदिता मरुदेशे चारणाः संति ।।७८।।

श्रीराइपालनृपतिः परमो वदान्यो यो रंतिदेव सदृशो भवदन्नसंत्रे ।
अद्यापि तस्य तु महेवपुरे महत्यः स्थाल्यो महामदगजैर्ननु संति
वाह्याः ।।७९।।

---

१. त्वगात् ।

तस्माज्जातः कन्हडो वह्लितेजास्तत्पुत्रो भूज्जाल्हणः सत्यसंधः ।
राज्ञामाज्ञा यस्य धार्या समौलौ मल्लीमालातुल्यमत्यादरेण ॥८०॥

कदाचिदाखेटककौतुकात्स, वनं गतो बिंबफलान्यपश्यत् ।
आज्ञापयामास न कश्चिदन्यश्चिनोतु चित्रं वनभूषणानि ॥८१॥

तन्मध्ये परमारवशविभवः सोढाग्रहीदेककं
कश्चित्कर्हिचनेह विस्मृतिवशाद्बिंबीफलं मोहितः ।
सोढानव्यवहेलनं निजगिरः सोढान्पुनः सर्वशः
सर्वस्वेन वियोजितान् व्यरचयद्दंडे महादारुणः ॥८२॥

प्रत्यक्षं प्रतिपालयन्पितृवचः पुत्रस्तदीयः पुन—
र्दंडं तत्परमारमंडलभवान्छाडाग्रहीद्वाडवान् ।
अ[1] (?) रुद्यावडवास्तदीय तनुजस्तीडा असंख्यायत—
स्तद्योधाः शलभा इव क्षितितलेऽभूवन्नतो भाषया ॥८३॥

येन स्वर्णगिरीश्वरो युधि जितः सामंतसिंहो बलात्
तत्पुत्रोऽपि त्वभिन्नवालनगराधोशः सलक्षोऽभवत् ।
येनागृह्यत सर्वतोऽपि परितः सामंतभूमीभुजां
यावद्गोगजवाजिवाहनधनं प्रत्यब्दमब्दश्रिया ॥८४॥

चत्वारस्तनुजास्ततोऽजनिष तेषां मल्लदेवोऽग्रजः
सोदर्योऽस्य च जैत्रमल्ल इतरो वीरम्मदे[2] शोभितौ ।
युद्धे सिद्धिमदात्प्रसादितमनाः श्रीमल्लदेवाय वै
देवः कश्चन[3] विश्रुतो भवि गवां स्वामीति विश्रूयते[4] ॥८५॥

निहंतुमहित त्रितं तिमिरलंगभामैकतः
समागमदितोन्यतो निखिलगुर्ज्जराधीश्वरः ।
असावसमसाहसो निशि निपत्य दिल्लीश्वरं
प्रभातसमये जवादुपगतोऽजयद् गुर्ज्जरम् ॥८६॥

श्रीजैत्रमल्लेन सिमाणभूभृतो[5] भूमीभृता सोदरनोदितेन तौ ।
विस्मारितौ नैजवासनोवृतोऽन्यमातृजौ वीरमदेव शोभितौ ॥८७॥

---

१. छन्दः दोषः । २. वीरम्मदे इति मूले ।
३. कश्चत इति । ४. विश्रुयते ।
५. सिवाणा इति भाषायाम् ।

मानदानविधिभिः प्रलोभितः सिंधुनाथमगमत्स शोभितः ।
तत्र गोग्रहनिमित्ततोभितः प्रक्रमन्युधि हतोऽपि शोभितः ।।८८।।

वीरम्मदेवस्तु जगाम जेतुं जोद्रकराजन्यकमुग्र तेजाः ।
जघान वीरः स वडेरणींद्रं वडेरणींद्रोऽपि युधावधीत्तम् ।।८९।।

चंडप्रतापस्तनयस्तदीयश्चंडः पुनर्मंडलमागतः स्वं ।
मंडोवरान्नागवरान्बलेन बुभोज भोजप्रतिमो महौजा ।।९०।।

पुत्रस्तदीयो रणमल्लनामा धामाधिकः स्वर्णगिरीशवंश्यान् ।
कूपे निचिक्षेप निहत्य सार्द्धं शतं नृपान्भाविविगंधभीत्या[1] ।।९१।।

समाक्रमन्नागवरादिनीवृतः पीरोजखानोऽपि यतः पराजितः ।
तस्यानुजं यो महमूदनामकं जघान युद्धे परधामकामुकम् ।।९२।।

विजित्य भाटीनृपसैन्यघाटीमयं पुनर्हंतुमितः प्रतस्थे ।
तदाशु तेषां समुपेत्य बंदीमंदीकृतोत्साहमुवाच वीरम् ।।९३।।

अनौचिती ते महती नृपेयं जितान्न निघ्नंति कदापि वीराः ।
समानयन्वंदिवचस्तदानीमयं निवृत्तः करुणार्द्रचित्तः ।।९४।।

चाचामेराभिधाभ्यां कपटविनिहतं चित्रकूटाचलेंद्रं ।
श्रुत्वा स्वं भागिनेयं धृतसकलकलं मोकलं निष्कलंकम् ।
तत्प्राणैः पारणां प्राक्तदनु विरचयेन्नैरिति द्राक्प्रतिज्ञाम्
चक्रे सत्यां निहत्य प्रथितमिति पईपर्वतानाश्रितौ तौ ।।८५।।

जोधो मंडनमंडलावनु ततोऽखेराजनाथूद्धवा
जाता डूंगरकोन्वतोऽनुजनुषौ लक्षांडवालौ ततः ।
कर्णोरूपकचंपकावथ ततः पातोऽनु बालोऽभवन्
नाम्ना कंधिलहायसायरनृपा विश्वैर्मितास्तत्सुताः ।।९६।।

आः पापं दुर्ज्जनोक्तिप्रकरकलुषितो[2] मोकलस्यांगजन्मा
तं राणाकुम्भकर्णो निशि निशितरुचं निद्रितं निर्जघान ।
योधः प्राप्तप्रबोधः कलितकलकलैः कल्मषं शंकमानो
निंदन्भिदन्नदानां पथि पथि परितश्चक्रमे चक्रमेकः ।।९७।।

---

१. तथ्यमिदमतिहासग्रंथेषु नोपलभ्यते । २. कलपितो ।

निर्द्रोहमोहलवलोहठशर्म्मणोऽसौ
लूढावसाभिद्यमदादिह पत्तनं तत् ।
अद्यापि तत्कुलभवा विलसद्विलासा
व्यासास्तदन्वयशुभं परिचितयंति ।।९८।।

गयाशीर्षं यस्मिन्पितृयजनकामे प्रचलिते
परिप्राप्तिः प्रह्वा जमणपुरनाथः पथिजवान् ।
ययाचे दिल्लीशादभयमयमस्मं त्वददान्[1]
महायोधोयोधः समजनि गयामोचितकरः ।।९९।।

प्रौढैर्यन विचित्रमत्र शकटारूढर्भटै प्रोद्भटं—
राणावारणवाजिवाहनबलः प्राक्कुंभकर्णो जितः ।
ईशं जूणपुरस्य विक्रमबलाद्विप्लाव्य दिल्लीभुवो
रक्षद्यो वहलोललोलरसनग्रस्तं समभ्यर्थितः ।।१००।।

क्रोवाज्जूणपुरान्निवृत्य सहसा सारंगखानं निजं
भ्रातारं बहलोलसाहिरहितं तं हंतुमायोजयत् ।
योधो योधवरो युवायुधधरैर्युध्यंतमेनं बलात्
विक्रम्य व्यवधीद्यथा मृगपति मत्तं महावारणम् ।।१०१।।

नाम्ना योधपुरं पुरं व्यरचयत्स्वेनैव धामाधिक
माद्यद्वारणवृंदवृंहितवृतं हेषारवैर्वाजिनाम् ।
नाना स्यन्दननेमिघोषध्वनितैरास्फोटितैः खेलतां—
नादैश्चापभवैर्दि[2]शत्यविरतं शब्दस्य यन्नित्यताम् ।।१०२।।

दारा इव केदारा घनशालीनतावृता यत्र—
कथयंत कलमधुरं कस्य न सुखयंति चेतांसि ।।१०३।।

केलीगृहांतरगतेन निशासुखस्यामानंदमुग्धमनसां सुरतांतरेषु ।
पारावतेन[3] कलकोमलकाकलीभिः संस्मार्यते रतविकूजित—
मंगनानाम् ।।१०४।।

तस्य तनूजाः सूजा विक्रमवरसिंहदूदाख्याः
अन्वजनि राइपालोऽनु कर्म्मसिंहोऽनु वणवीरः ।।१०५।।

---

१. चतददान् । २. नादैश्चापजैरिति मूले ।
३. पारापतेन ।

शिवराजनिंबसंज्ञौ बीदा सामंतसिंहश्च—
भारमल्लश्चेत्यभवन्भूपतयः सर्व्वे एवैते ।।१०६।।

तस्यानेकेषु सूनुष्वयमथ विनयन्यायविख्यातकीर्त्तिः,
कल्पः कल्पद्रुमश्रीर्वितरणविषये नाम यः काममूर्त्तिः ।
सूजा भूजानिपुंजा नतसुभगपदः पद्मनाभस्य नित्यं
पूजासूज्जागरूकः स्वजनकनगरीराज्यमाप प्रतापात् ।।१०७।।

बीकानेरं स्वनामांकितनगरवरं विक्रमोऽवासयत्स्वं
प्रोद्यत्सौवर्णसौधच्छविभिरविरतं मेरुतामाप्तवत्यां ।
राजाऽसोन्मेरुतायां पुरि किल वरसिंहादनूदारकीर्त्ति—
र्दूदा भूदानशीलोऽखिलभुवि समभूदासमुद्रप्रतापः ।।१०८।।

समजायत रायपालनामा क्षितिपः खीवसरीश्वरः क्षमावान् ।
वरवीरवलर्दलैः सलीलं कलयामास कुलं खलं खलानाम् ।।१०६।।

द्रूणाडे शिवराज एव समभूदुड्डामरे डामरे
राजा राजशिरोमणिः किल बलात्सामंतसिंहाह्वयः ।
बीदा द्रोणपुरेश्वरः समभवद्बोलाडसंज्ञे पुरे
राजा भारमलोऽभवद्बलभराक्रांताखिलक्ष्मातलः ।।११०।।

राजा स्वयं योधपुरस्य सूजा पूजासु सक्तः सुरभूसुराणां ।
तत्सूनुरासोद्रहितः सदाघाद्बाघा निदाघार्कसमानतेजाः ।।१११।।

प्रोद्यत्प्रतापस्तत आस गांगो गांगेयवद्गेयपवित्रकीर्त्तिः ।
युद्धे धराधारधुरीणधीरो धनुर्द्धराणां धुरि धारणीयः ।।११२।।

नीत्वा यावनवाहिनीमुपगतं यो गोत्रशत्रुं पुर—
स्कृत्वा कुंजरराजमाजिषु महादुर्द्धर्षवेग मृधे ।
प्रावपार्थो भगदत्तकुंजरमिव द्वेधा विधायेषुणा
शेषं शेषभुजंगभूषणभुजो द्राक्कीर्त्तिशेषं व्यधात् ।।११३।।

प्रोद्यत्प्रत्यर्थिपृथ्वीपरिवृढपटिम प्रौढिपाटी प्रहर्त्ता
पृथ्वीपालस्ततोभूदतिसुभगतनुर्मालियो मालदेवः ।
ग्रस्तारेर्यत्पुरस्तादजनिषत परे पातिसाहाः समस्ताः
त्रस्ता अभ्यस्तसामार्पणविधय इतः कः परस्तात्प्रतापः ।।११४।।

आक्रांता निजविक्रमाद्वसुमतीसामंतभूमीभुजो
जित्वा येन समंततो बलभरैर्यस्या नमद्वासुकिः।

आदायारिनदीनदादिनिवहद्रव्योदकान्यंबुद—
प्रख्यः प्राशमयद्द्विजोदितमहादारिद्र्यदावानलम् ।।११५।।

यं देवा यज्ञमूर्ति विदुरथ वनिताः पंचबाणं स्ववर्गः
चंद्रं सर्वाः प्रजाः स्वपितरमथ परं कल्पवृक्षं कवीन्द्राः ।
मृत्युप्रायं प्रतोपा रसमिव रसिका माधवं भूरुहोपि
गंधर्वप्रायमेणाः किमपरमखिलाः प्राणिनः प्राणमूर्त्तिः ।।११६।।

शेषः श्वासावशेषश्चपलचकितदृग्नागपालो दिगीश—
स्त्रस्यंतो दिक्करींद्रा प्रबलभरलस[1]त्कुंभदुर्नम्रदुस्थाः ।
राजानोन्ये वराकाः करकृतबहुलोपायनास्त्यक्तशस्त्राः[2]
पादद्वन्द्वं प्रपेदुर्विरचयति दिशां जैत्रयात्राममुष्मिन् ।।११७।।

बीकानेराधिनाथादभवदनुनृपो विक्रमाल्लूणकर्ण—
स्तत्पश्चाज्जैत्रसिंहस्तदनु समभवद्रायकल्याणमल्लः ।
राजाभूद्रायसिंहस्तदनु तदनुजाश्च त्रयो रामसिंह
पृथ्वीराजाभिधानात्सकलगुणनिधेः प्राक्सुरत्राणनामा ।।११८।।

पृथ्वीराजः प्रपेदेऽकबरनरपते गगराटाचलेंद्रं
तेने तेन प्रधाना निखिलवसुमती तेन राजन्वतीह ।
खीचीनां रक्तवीचीनिचयमयनदीचीर्णवीरव्रतश्री—
र्न्नीचीकुर्वन्नुदीचोदिवसकरमपि स्वप्रतापप्रभावात् ।।११९।।

चतुर्दशशतैः खीचीमुंडश्चडपराक्रमः
चत्वरं समरेऽकार्षीत्सत्वरं सत्वरं हठा ।।१२०।।

विहंगा स्यंदंते न च नयति सिद्धा न मुनयो
न सत्वारो वाचां न चलति मनो यत्र च पदम् ।
तमध्वानं तीर्णोऽम्बुंधिमिव हनूमानवनिभृत्
पृथु प्राप्तो लंकापुरमिव निजामैंद्रनगरीम् ।।१२१।।

भेजे भोजप्रभावो निजभुजविजितां मेरुताराजधानीं
मानी दानी हि मानो कररुचिरयशोराशिराशिर्निधानम् ।
दूदा सौदामिनीव स्फुरणविरचितारातिचक्षुर्निमीला
दुःशीला खड्गलीला रणभुवि लसति स्मातिभीता यदीया ।।१२२।।

---

१. ललन् ।　　　२. नास्तत्क्तशस्त्राः ।

बालः कुंतेन कालक्षण इव कुतुभूखानवक्षश्चखान
प्राप्तं योधैरनैकैरपि किल समरे शेरखानं जिगाय ।
नीतानां मोचनाय त्वरित इह गवां द्वादशाग्रैः सहस्रैः—
गुप्तं योधैः[1] सहस्रार्जुन इव शिरियाखानमाजौ जघान ।।१२३।।

तत्पुत्रेषु बहुष्वपि प्रतिभटप्रोद्दंडदर्प्पापहः ।
कंदर्प्पादपि सुंदरः समभवद्राजा महाधार्मिकः ।
वीरो वीरमदेव एव सकलज्ज्यैष्ठेन तद्भ्रातरः
सौभ्रात्रं भरतादिव व्यरचयस्तस्मिन् धराधीश्वरे ।।१२४।।

तत्सूनुर्जयमालइत्यवनिभृद्वंद्याङ्घ्रिपीठो भवत्[2]
योन्वर्थो रणमंडलेषु रचयन्माला जयानामिह ।
चित्रं यच्चरितानि कर्णपुटकैः संत पिवंतो मुदा
जाता भीष्मयुधिष्ठिरादिचरिते मंदादराः सुंदरे ।।१२५।।

मूर्त्तिर्यस्याद्य यावज्जयति जयनिधेरागरायां नगर्या—
मार्यैर्या वंदनीयाऽवरयवनजनैर्मूर्त्तिविद्वेषिभिश्च ।
संप्राप्तानेकसिद्धिः प्रसृमरमहिमा स्थापयत्कुंजरस्थां
यां विज्ञाय प्रभावानकबरनृपतिर्द्वारि दुर्गस्य गुप्त्यै ।।१२६।।

प्रोद्धर्तुं भुवनानि ये विरचिता स्तंभा इव ब्रह्मणा
पुत्रास्तस्य चतुर्दशाजनिषत प्रख्यातदोर्विक्रमाः ।
तत्राद्यः सुरताण इत्यनु ततः शार्दूलनामा ततः
क्षेमेशः केशवदास इत्यनु ततः कल्याणदासोऽभवत् ।।१२७।।

अन्यो माधवदास इत्यनु ततो गोविंददासस्ततः
प्रोद्दामः किल रामदास इतरस्तस्माच्च नारायणः ।
वीरो विट्ठलदास इत्यनु ततो जातो नृसिंहस्ततो
भूपालो हरिदास इत्यनु मुदां कंदो मुकुंदोऽभवत् ।।१२८।।

तेजोधाम श्यामदासः कनीयानेषां नाम द्वारकादास आसीत् ।
यं युध्यंतं दाक्षिणात्यैर्जयश्रीर्द्राग्देवश्रीश्चेकदेव प्रपेदे ।।१२९।।

इति द्वितीयसर्गः ।।२।।

---

१. सुहस्रार्जुन । २. वंद्यांघ्रि ।

श्रीमालदेवाच्च गुणाभिरामो रामस्ततोनूदयसिंहसंज्ञः ।
श्रीचन्द्रसेनोऽजनि रत्नसिंहः प्राग्भोजराजादनुराइपालल ।।१३०।।

रामे सर्वगुणाभिरामवपुषि श्रीमालदेवो नृपः
सिंहेवोदयसिंह नामनि सति प्रावचंद्रसेनेऽनुजे ।
भावं यन्निव बंधमानसमसौ तत्तावयोग्यौ नहि
न्यायेणेश्वरचित्तवृत्तिविभवाश्चित्रा भवंतीह यत् ।।१३१।।

मात्रानुजस्यापि निजस्य सूनोरभ्यर्थितो राजपदं स राजा
तच्चित्तवृत्त्यानुसरन्हि रामः प्राक् चित्रकूटाञ्चलमुज्जगाम ।।१३२।।

दशरथ इव मालदेनृदेवो मृगनयनावशवर्त्तितामुपेत्य ।
फलविधिषु नियोजयाञ्चकारोदयनृपमग्रजनि तनूजरत्नम् ।।१३३।।

तदनु जनकदत्तं चन्द्रसेनः स्वराज्यं
बहुतरबललक्ष्मीसंपदंगीचकार ।
न यदि निखिललोका लाभलोला भवेयुः
कथमिह भरतं तं श्लाघयेयुर्महांतः ।।१३४।

प्रस्थिते पितरि दैवतलोकं स्वावगाननरुषोदयसिंहः ।
द्राक् चकार निजमातुलवंशे वासिनैक्यमति रामनृपेण ।।१३५।।

नीत्वानेकबलानि रामनृपतिर्व्यद्रावयन्मारवन्
देशं यावदुधा (?) जमामकुपितस्तं (?) वसेनाह्वयः ।
तावद्योधपुरा वधि व्यधिततद्दशानसावात्मसात्
तस्यानूदयसिंहनामनृपतिर्निघ्नन्ननेकान्भटान् ।।१३६।।

श्रुत्वा तद्युधि[1] ब्रुद्धवानुभयतः पाशेव रज्जुस्ततः
संधिं प्रागकरोन्कथं कथमपि श्रीरामभूमीभुजा ।
प्रत्यावृत्य महाबलः पुनरसौ द्राक्चन्द्रसेनाभ्ययात्
भूपालादयसिंह सम्मुखमयं योद्धुं युधि प्रोद्धुरम् ।।१३७।।

तत्रासीत्तुमुलो रणः प्रतिभटाटोपोत्कटास्फोटित--
स्फूर्ज्जद्विद्युदुदंचदायुधवलज्ज्वालाकरालोज्वलः ।
रामेणाव पुरा वटा नृपघटोद्यल्लोहितैः पूरिता
षातः किल लोहियावट इतस्तद्ग्राम नामाभवत् ।।१३८।।

---

१. बुद्धवान् ।

त बलादुदयसिंहसंज्ञितः सैंहिकेय इव रोषदोषतः ।
सत्वरं समरसाहसी हठात्सत्समग्रबलमग्रसत्किल ॥१३९॥

कर्णार्जुनौ भीमसुयोधनौ वा यथा पुरा लक्ष्मणमेघनादौ ।
रणांगणे रेजतुरेवमेतौ तौ चन्द्रसेनोदयसिंहवीरौ ॥१४०॥

महाबलेनोदयसिंहनाम्ना ग्रस्तोपिचन्द्रः पुनश्चोदियाय[1] ।
विधेर्विधातुबलवत्तयावत् ग्रस्तोपि चन्द्रः पुनरभ्युदेति ॥१४१॥

तावुभौ निशितशस्त्रविक्षतौ मूर्च्छितौ निपतितौ रणांगणे ।
सनिकैः समपसारितौ ततो जीवितौ विधिवशात्कथंचन ॥१४२॥

फलविधिमभिधानतः पुरीमुदयनराधिपतिः समुज्झति स्म ।
अधिकबलमुदीक्ष्य चन्द्रसेनं हसनकुलीयवनाधिपं जगाम ॥१४३॥

प्रौढप्रतापपटुचन्द्रनृपेणवैरं रामस्तु शोज्झतिमवाप्य समुज्झति स्म
तस्यांगजाश्च किल पूरणमल्लकर्णौ वीरः कलाख्य इति—
भूपतिकेशवाख्यौ ॥१४४॥

नारायणस्तदनुराघवदास आसीदेषांकला कमपि कालमिहासरायः ।
पश्चादभूत्कमपि केशवदासरायो माहिष्मतिपुरपतिस्तुस्तुतप्रताप ॥
युग्मम् ॥१४५॥

आदाय सैन्यं यवनाधिनाथादिहाजगामोदयसिंहवीरः ।
निजां पुरीमात्मवशादकार्षीन्न निश्चितार्थाद्विरमंति धीराः ॥१४६॥

फलविधिमवधिं विधाय सीम्नामकबरवीरमियाय सार्वभौमम् ।
मनसि सुखमपूरितप्रतिज्ञाः कथमभिमानधना मनाग्वहन्ति ॥१४७॥

जयतिजलधिवेला मेखलालंकृतोर्वी
वलयवलयमेकेनादधानः करेण ।
अकबरधरणीशो शेषराजन्यचूडा—
मुकुटमणि समुद्यत्कांतिनीराजितांघ्रिः ॥१४८॥

द्विगुणितनवसंख्यद्वीपदीव्यत्प्रतापो
निखिलभुवनचक्षुश्चक्रमानंदयन्यः
विततिमिरवंशोप्येष शश्वत्प्रकाश—
स्तरणिरिव चकत्ताचक्रवर्ती चकास्ति ॥१४९॥

---

१. पुनरोदियाय ।

अर्व्वाच्चो नैव सर्वावनिवलयभुजो विक्रमादित्यमुख्याः
प्राचः प्रभ्रष्टराज्याः बलिनहुषहरिश्चन्द्रसंज्ञाः क्षितीशाः ।
देवा एकैकदिक्कास्त्रिदशपतिमुखा गोचरो नैव वाचां
विश्वेशः केन तस्मादकबरधरणीपाल कुर्म्मस्तुलांते ।।१५०।।

कैलाशाभंश्रिता अथ चलमकबरोर्वीश[1] युष्मत्प्रतीप—
ज्वालाभालाललाटं तपतपनतुलत्वत्प्रतापातपेन ।
भस्मावासेवसाना अपि[2] गलितगरा नेशता यांति यावन्
मौलौ त्वत्पन्नखेंदुं दधति न च दयादृष्टि गंगाजटासु ।।१५१।।

षट्पदो

गोकुलकालनकलुषमाकलय्य कलिकालिमनि—
चकित चकितमध्यासवासमर्द्धपदमध्यवनि ।
अकबर नृपवर भवति भवति भुवनभृति राजनि
जंतुजात वध-जात वृजितमनुचितमिति नाजनि
इह धर्म एष गोरूप इति निर्व्विशंकचित्तः स्फुरति
चरणैश्चतुर्भिरुन्नतिककुद्दश ककुप्सु नित्यं चरति ।।१५२।।

तेन मानबहुदानविधानैस्तोषितः सुखमुवास स सिंहः ।
चंद्रसेननृपतिस्तु पदे धादास कर्णमनुजं स्वे ।।१५३।।

स्वर्गं गते नरपतौ किल चन्द्रसेने जाग्रत् समग्रमतिरग्रज उग्रसेनः ।
द्रागासकर्णनृपतिश्च परस्परेण सुंदोपसुंदविधिना विधिना—
हतौ तौ ।।१५४।।

तदनु तदनुजन्मा रायसिंहाभिधानो गलितसकलरत्नस्वर्णनेपथ्यकांति ।
विनिहतबन्धुवीरं स्वं कुलं शोचमानः शरणमुपजगामोर्वीशजल्लाल—
दीनम् ।।१५५।।

खूमाण[3]राणोदयसिंहसूनोः सहायहेतोर्जगमालनाम्नः ।
संप्रेषितः श्रीमदकब्बरेण रणे हतः सोर्बुदनायकेन ।।१५६ ।

१. प्रतीपा ।   २. गिलित ।
३. संप्रेषितः श्रीमदकब्बरेण ।

अकबरयवनेश्वरेण तोषादुदयनृपे निहिताशु राजलक्ष्मीः ।
घनसमयविकीर्णमंबुवेल्लन्यदिह गभीरभुवि स्थिरत्वमेति ॥१५७॥

दिनमिवदिनकृन्निशं यथेन्दुः कनकविभूषणमाप्य चारुरत्नं ।
निजजनकपदं प्रपद्य रेजे तदुदयसिंहनृपः पदं च तेन ॥१५८॥

अथ योधपुरं प्रपद्य सद्यः कृतीनामिह नंदयन्मनांसि ।
सबलः प्रथमं किल प्रतस्थेऽर्बुदनाथोपरि रायसिंहवैरात् ॥१५९॥

सिचंतः सततं महीं मदगजाः दानद्रवैः सर्वतो
नाद्याप्यश्वगणाः[1] स्पृशंति धरणीं मत्वार्त्तवं बिभ्रतीम् ।
तत्किं व्योमरजःप्रसारिपटलप्रच्छन्नमाकल्पितं
सेनासंकुलवर्त्मयंत्रितहयस्वैरप्रचाराभटाः ॥१६०॥

यत्पापं व्यरचि छलाद्यदवधीत्तं चन्द्रसेनात्मजं
पश्चात्तापमविंदतोदयमहाराजे समभ्यागते ।
सद्यस्तत्फलमन्वभूत्सुनयनात्रृंदैः सह व्याकुलो
यद्भ्राम वने वनेचरजनैः सार्द्धं शिरोहीश्वरः ॥१६१॥

माद्यत्सिंधुरधोरणीभिरभितः संमर्दिता सा पुरी
सार्द्धं राजगृहैस्तथा नहि यथाऽसीत्प्रागिति ज्ञायते ।
यन्नारायणमन्दिरं नृपतिनानेनावशेषीकृतं
(त) त्व[2]स्याजनि केवलं निजजयस्तंभः सदाभ्रंकषः ॥१६२॥

अद्य यावदुररीकृतं ततो दंडमर्प्ययति चंडतेजसो ।
त्यक्तगर्वमयमर्व्वमर्व्वतामर्व्बुदं कनकमर्बुदेश्वरः ॥१६३॥

तस्यायं क्षितिपालमंडनमणे राजानुबाहुर्युवा
शालप्रांशुरतिप्रसारिहृदयः पीनोन्नतांसः सुतः ।
राजाराजशिरोमणि विजयते श्रीसूर्यसिंहाभिधः
सेवंते गुणवत्तयैनमपरे ज्येष्ठा कनिष्ठा अपि ॥१६४॥

अक्षयराजः पूववदनु च भगवंतदासाख्यः ।
तदनु च नरहरिदासस्तदनु जनिर्जैनृसिंह इति ॥१६५॥

अनु शक्तसिंह दलपतिभूपतयो माधवाभिधः सिंहः ।
अनुकृष्णसिंह एते सर्व्वेस्मिन् भ्रातरो भक्ता ॥१६६॥

---

१. स चस्या ।   २. नाजानयगणाः ।

क्षमः प्रजानां परिपालनाय भवेत्पुनः दुर्जनतर्ज्जनाय ।
ज्यायान्कनीयानपि वा स राजा यथा यदुः पांडु[1]यशाश्च —
पांडुः ॥१६७॥

सेवते नेककुल्या जनपदपतयः शौर्यधैर्यकवास —
स्तन्मध्ये विद्धि भाटी यदुकुलतिलकोऽमात्यमित्रं तदस्य ।
वीर्यौदार्यादिनानागुणगणनिलयो नाम गोविंददासो
यो जानात्येक एवाखिलभुवनतले स्वामिधर्मस्य मर्म ॥१६८॥

येन्ये शोज्भति मेरुताधिपतयो दर्पादवज्ञाकृत —
स्तान्बंधूनपि शक्तसिंहकजगन्नाथादिकान्प्रोद्धतान् ।
युक्तं यद्वयुदवासयज्जनपदांस्तेषां चकारात्मसात् ।
राज्यस्य स्वजनैर्विभक्तविभवस्याज्ञौ वराज्ञां फलं ॥१६९॥

यत्प्रोद्यद्दलदारितक्षितितलस्त्रस्तः समस्तक्षणं[2]
देवो देवडभूभुजामपभुजा गर्व्वः परिभ्राम्यति ।
दंडद्रव्यचयस्य संचयविधिव्यग्रः सदोग्रस्तुव —
न्निद्रां मंक्षु निशि क्षुधां न लभते दुर्द्दीनचक्षुर्दिनो ॥१७०॥

अनेक राजन्यककन्यकानां जग्राह पाणिं विधिवद्विधिज्ञः ।
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य कांतं रेजे यथा दक्षसुताः सुधांशुम् ॥१७१॥

यज्ञविज्ञः समज्ञो ज्वलितदशदिशो नंदयित्वा स देवा —
नात्मानं पुत्रलाभात्पितृऋणनिगडान्मोक्तुकामः स्वनाम ।
आरेभे पुत्रयाग[3] दशरथनृपवर प्रीणयन् हव्यवाहं ।
विद्वद्दारिद्र्यदावानलशमनमनः स्वर्णधाराः प्रवर्षन् ॥१७२॥

वरममरसरः पतेरिव श्रीः समजनि दुर्जनशल्यनामधेयात् ।
द्रुपदनरपतेः पुरेव कृष्णा गुणनिधिरंगजनुर्ललाम कृष्णा ॥१७३॥

विलसितबहुलावरोधभर्तुर्गुणनिचयेन मनोविनोदभूमिः ।
समभवदनीपतेः परं सा गिरधरमूर्त्तिधरस्य राधिकेव ।
युग्मम् ॥१७४॥

---

१. पांड । २. समसूक्षण ।
३. पुत्रीयेष्टि () ।

सा श्रीविष्णोर्यज्ञमूर्त्तेः प्रसादात्पुत्रं लेभे सूरसिंहक्षितोशात्
यद्वत्पंक्तिस्यंदनाच्चन्द्रकान्तं कौशल्या श्रीरामचन्द्रं नरेन्द्रात् ।।१७५।।

ग्रहितगजघटाविघट्टनेषु प्रभवति विक्रमभूम्नि सिंहवद्यत्
अकबरनृपतिश्चकार नाम्ना तनुजमर्णि गर्जसिंहमित्यभिज्ञः ।।१७६।।

इति श्रीसूरप्रकाशे माधवभट्टकृतौ तृतीय सर्गः ।

भूमीरंजनगुर्ज्जरं जनपदं ज्ञात्वा चकत्तेश्वरो
ग्रस्तं साहिबहादुरान्धतमसा त्वां युक्तमायोजयत् ।
लोकं यत्परितः प्रकाशयितुमुद्धर्तुं च वेदक्रियाम्
चक्रे नंदयितुं तमस्तिरयितुं सूर्यात्परः कः प्रभुः ।।१७७।।

युद्धेऽकारि महान्बहादुरनृपः श्रीसूरसिंह त्वया
पर्ज्जन्योर्जितगर्ज्जगुर्ज्जरसुरत्राणस्तथा जर्जरः ।
भ्रष्टोत्साहमसाहसः स समरे[1] भीरुर्यदद्यावधि
भ्राम्यत्यद्रिदरीसमुद्रलहरीकांतारकुञ्जान्तरे ।।१७८।।

साम्राज्यं गुर्ज्जरेषु व्यरचि तदनु त्वादर्शि जल्लालदीनः
तस्याज्ञातो विजेतुं समगमि च दिशा दक्षिणा तत्क्षणेन ।
तत्र श्रीखानखाना नरपतितिलको वंदिपादारविंदे
शिक्षंतुं (?) स्वामिभक्तिं भुवननृपतयः सूरसिंहक्षितीशान् ।।१७९।।

त्वत्तःसाहिनिजामदुर्ज्जयदलाधीशोथ भंगाभिधो
भूयोभिर्हबसिव्रजैःपरिवृतो भंगाकुलो भ्रान्तवान् ।
राजूराजिषुराजराजरजसा त्वद्वाजिराजीखुर-
क्षुण्णेनावृतनेत्रपालिरभितो भ्रश्यद्दृश[1] भ्राम्यति ।।१८०।

स्फूर्ज्जद्गर्जवतो दिशो घनघटापूरैः समावृण्वतो
दृष्ट्वाडंबरमंबरस्य चकितैर्द्राग्राजहंसैर्द्रुतम् ।
सद्यस्तत्प्रविघट्टने पटुतरं त्वां[2] सूर्यमायोजयत्
पुत्रं च प्रबलप्रभंजनमिव श्रीखानखाना प्रभुः ।।१८१।।

प्रति हबसिबलं ततः प्रतस्थे सह मिरजामणिनैरिजाभिधेन
तुरगखुरपुन्थन्थधूलिपूरैः प्रतिनृपमंवरमंबरं च रुन्धन् ।।१८२।।

---

१. स मरे ।

१. भ्रश्यन्स्मृश ।   २. श्चासूर्यं ।

सूयस्यास्य शनैश्चरस्य हबसिन्नातेशितुश्चाभव—
द्योग: कैश्चन वासरै: सबलयोरागच्छतो सम्मुखम् ।
नैतस्यात्मविचारणा किल रणे काचित्तथासीद्यथा
बालश्रीमिरजोरजावनकृते चिन्तासमन्तादभूत् ।।१८३।।

अत्रान्तरे चंडरुचौ चरमाचलचुंबिनि
अध्वश्रमपरिश्रान्तं निविवेश बलद्वयम् ।१८४।।

उदियाय च चक्रचक्रवै वोपशमप्रक्रममूलमंत्रमूर्तिः ।
दिनकृन्नृपतिश्च स व्यधात्स्वबलोद्योगविधिं विचक्षणः ।।१८५।।

सद्यः सन्नह्य (... ....) ति[1] दलयुगे वीररोमांचवर्ण्यैः

प्रोद्यद्भिर्भूरिभेरपटुपटहरवैः पूर्यमाणे दिगंते
प्रातः स्नातः प्रसन्नः कृतनियतविधिः पूजयित्वा स जिष्णुं
श्रीकृष्णं कोमलाभिः स्तुतिभिरिति तदा तुष्टुवे सुष्ठुवेषः ।।१८६।।

नमस्ते समस्तेशविद्यक्प्रशस्ते नरस्तेऽर्चकस्तस्य हस्ते जयश्री
जयश्रीपतेभक्तहृद्दीपते कोप्यवा चीयते भीतिभिर्लिप्यते न ।।१८७।।

न कश्चित्कपर्दीनगदेहमर्दी न जंभप्रतर्दी तदुद्दीपनाय
सदानंदरूपं सदानंदमूनुं विजानंति ये त्वामजानंत मूर्त्ति ।।१८८।।

नमः काममूर्त्ते मनष्कामपूर्ते सदारामविश्रामभूमेर्मुनीनां ।
लसत्पद्मदाम त्रिलोकीललाम स्फुरद्धाम तत्ते नमामः स्मरामः ।।१८९।।

नमः कंसविध्वंसिने शंसिने ते नमः केशिविभ्रंशिने वंशिने ते ।
नमस्तेस्तु कृष्णाय कृष्णातिलज्जापरित्राणसज्जाय हृज्जागरूक ! ।।१९०।।

नमोनाम गोपाल गोपालनायोल्लसद्धस्तविन्यस्तगोवर्द्धनाय ।
नमो वल्लवीचारुदृक्पल्लवीवित् नमः पोतविस्फीतदावानलाय ।।१९१।।

नमः पारिजाताय हर्त्रे विहर्त्रे हरेर्गर्वसर्व्वस्वविच्छेदकर्त्रे ।
नमः सत्यभामाभिरामाय तुभ्यं गुरुस्वर्णचंचत्सुपर्णप्रवर्ण ।।१९२।।

---

१. छंदसि दोषत्वम् । सन्नह्य क्षुब्धैः प्रति 'इति सुतरां ज्ञेयम् ।

सुधाम्ने सुधाकर्षिणे ते जगद्बंधवे सिन्धु निर्मंथनाय ।
नमो मोहिनीरूपिणे यूपिने ते नमोदेवतद्रोहकृन्मोहकर्त्रे ॥१९३॥

नमस्ते प्रमत्ताय सत्तामहिम्ने नमो रेवतीदेवतीभूत तुभ्यम् ।
वलाय प्रलंबप्रहर्त्रे हलाग्रोच्छलत्सूरसूतांबु पूरच्छलाय ॥१९४॥

तमालं तमालंवनं हेमवल्या अहल्याशिलाशापशल्यापनोदम् ।
वृतं वीरल[1]क्ष्मीलसल्लक्षणेनान्वितं लक्ष्मणेनाखिलक्ष्यीकरोमि ॥१९५॥

नमो निष्कलंकाय लंकाधिनाथ क्रुधा बद्धपाथःपते पुण्यगाथ ।
घनाभाय ते पद्मनाभाय योगिस्फुरच्चित्तलाभायितामात्त तुभ्यम् ॥१९६॥

इति प्रस्तुवन्वस्तुतस्तं नृपालः तमालोकयद्रूपमत्यद्भुतं तत् ।
परीक्षिद्यथा रक्षितं स्वं स मेनेऽनुभावी जयश्चान्वभावीहयेन ॥१९७॥

अत्रांतरे निशितशस्त्रनिपातजन्मा कोलाहलः कलहकेलिबलद्वयस्य ।
आविर्बभूव भुवने भयमादधानो भूप प्रणम्य भगवंतमथ प्रतस्थे ॥१९८॥

गीर्वाणैः किमु गीयसे गरुड किं गर्व्वं गते गाहसे
गोविन्देन गजेन्द्रमोचनजवान्मदः पथि प्रोज्झितः ।
रुद्धा योगिजने प्रभंजनगतिश्चेतः परे तत्पदे
कुंठं कंठरवैरिमान्किमिति धिक्कुर्व्वंतमर्व्वेश्वरम् ॥१९९॥

नद्धवर्ममुकुटोधृतहेतिर्देवराज इव देवतुरंगम् ।
आरुरोह स सरोरुहचक्षु विक्षिपन्निव दशैव विपक्षान् ॥२००॥

संघट्टंकटकद्वयस्य करटिद्वंद्वोत्कटास्फालित-
तुद्यद्दंतबलोच्छलच्छकलरुक्किर्मीरिता नेकदिक् ।
संदष्टोष्ठपुटोद्भटप्रतिभटप्रक्षिप्तकौक्षेयक
प्रोद्यत्कातरकांतिहृत्कटध्वानः समंतादभूत् ॥२०१॥[2]

किं भीष्मः किं नु भीमः किमुत स भरतः कि सहस्राज्र्जुनो वा
किं वा वोराधिवीराः क्षितिपतिमणयः श्रूयमाणाः पुरीणाः
दृष्टश्चेदेष वीरः समितिहिबशिनः कालयन्कालरूपः
कोपाल्लक्ष्यात्मपक्षाधिपतिमपि रिपुं योऽजयद्दुर्विजेयम् ॥२०२॥

---

१. वीरक्ष्मी ।   २. छन्ददोषः ।

युद्धप्रोद्धुरगर्व्वपर्व्वत महावीराधिवोर प्रभो
सूर्यक्षोणिमणे रणे प्रहरणे दत्तैकचित्तस्य ते ।
बद्धभ्रूकुटिरक्तलोचनयुग दृष्टौष्ठमुत्पश्यतो
मातंगा मशका इव प्रतिभटाः प्रांते पिपीला इव ।।२०३।।

यन्मातंग कदंबडंबरमपि त्यक्त्वा क्षणादंबर-
चित्रं देवदिगंबरः समभवद्वेगाद्दिगंतं गतः ।
तत्तं खंडयतः प्रचंड सुभटोदंचत्प्रपचं पुरो
दीव्यत् त्वद्भुजदंडविक्रमगुरोर्योगस्य विस्फूर्ज्जितम् ।।२०४।।

यन्नामश्रीनिजामप्रबलबलपतिग्रामसंग्रामभूमौ
भूमीभृन्मालदेवान्वयतिलकमणे सूरसिंह व्यधायि ।
तत्स्यंदत्कज्जलास्रैर्हबशयुवतिभिर्व्यक्तमालेखि सिंधौ
द्वोपाधोशैरधीतं निरवधि विविधां दुर्विधामादधानैः ।।२०५।।

संत्यक्ताः सिंधुरास्ते समितिनिपतिता बंधवोबंधुराश्च
व्यक्तं मुक्तं यशस्तद्भुवनभरभृतामंबरः प्राद्रवद्दक्
दिङ्मूढः प्रौढिहीनो हतनिखिलवलो हंत गूढः कथंचित्
निर्व्यूढः किन्तु तद्वत्पुनरतिचकितस्तत्पथं नाधिरुढः ।।२०६।।

अपहृतमनद (?) कुंजराधिराजभ्रमदलिगुंजितमञ्जुगीयमानां
परसमरजयश्रियं दधानः स निववृते मिरजैरिजेन सार्द्धम् ।।२०७।।

खानखानवसुधावसुधाम्ना वर्द्धितो विविधवस्तुविधानैः
आगरानगरमेत्य चकत्ताचक्रवर्त्तिचरणौ स ववंदे ।।२०८।।

पथिषु चिरवियोगोत्कंठिताभिः प्रजाभिः
प्रतिपुरमभिनद्यै मंगलैर्नीयमानः
अकबरधरणीशप्रेषितस्तोषपूर्वं
निजनगरमुपायान्नंदितानेकलोकम् । २०९।।

शृंगारितप्रांतचतुष्पथापणं सुमंगलोद्गीतनिनिबद्धतोरणं
महाजनैर्जीवजयेतिवर्द्धितः प्रविश्य तद्योधपुरं समृद्धिमत् ।।२१०।।

गवाक्षजालैर्जलजाननाकरप्रमुक्तमुक्ताकरवर्षहर्षितः
द्वार्युल्लसत्पल्लवकुंभसुंदरं विवेश राजा निजराजमंदिरम्।।युग्मम् ।।२११।।

विमुक्तमुक्ताफलराजिपूरितप्रभास्फुरद्राजत पात्रवर्तिभिः
नीराजितो मातृजनैर्विलोचनैरालिंगितश्चोत्सुकसुंदरीजनैः ।।२१२।।

स वदयित्वा गुरुवृद्धदेवान् संभाव्य चामात्यजनान् क्रमेण
आनन्दयन्नुत्सुकदारवर्गमंतः पुरे नेकसुखान्यभुक्त: । युग्मम् ।।२१३।।

एणशावनयनानिकुंरवैर्नैकभोगभवनं भुवनेशं
आजगाम ऋतुराजवसन्तः सेवितुं सुभगमत्र वसंतम् ।।२१४।।

मृदुमलयसमीरा दोलनास्तीर्णपुष्पाः
परभृतकमनीया लापलालित्यवन्तः
अहह ! विरहभाजो मंजुगुंजद्विरेफा
न इह हि निकुंजाः कस्यनोद्वेजयंति ।।२१५।।

उपरि विकसितानां माधवीमंडपानां
भ्रमदलिनिकुरंबं स्निग्धजीमूतकांति ।
अवहितमवलोक्योत्कंठितश्चारुकूजं
तरलयति शनैः स्वं पिच्छभारं मयूरः ।।२१६।।

इह मनोजनुषः सहकारिणीमुदित गुंजदलिव्रजचुंबिता ।
अरमयत् कुपिता अपि कामिना न सहकाः सहकारजमंजरी ।।२१७।।

विरहिणीहृदयप्रविदारणे छलितशोणितशोणरुचिर्भृशम् ।
मधुमृगेन्द्रनखालिरिवालसन्नवपलाशततिर्वनराजिषु ।।२१८।।

विरचयति मतल्ली [..................] प्रसून
प्रकरकनकमल्लीप्रांतभागे विभज्य
कलय मालिनि मानं लक्ष्य चेतांसि यूनां
मलिनयितुमनंगः संगिभृंगच्छलेन ।।२१९।।

इह दिशि दिशि फुल्लद्वल्लरी पुष्पजात-
प्रचरदतुलगंधां दोलयां लंबमानम् ।
मधुकरनिकुरंबं कीलितव्यालभोग-
भ्रममुपजनयन्न क्वापि यांत्यबरस्थम् ।।२२०।।

स मधु मधुरिमाणमीक्ष्यमाणो
मृगनयनामिलितो मनोजमूर्तिः
उपवनभवनं विवेश रंतुं
मदनमहोत्सवकेलिकौतुकेन ।।२२१।।

अर्प्पयन्नवरसालमंजरीः खंजरीटनयनावशंवदः
मादिनं मदनदेवमर्च्चयामास भासुरविलासलालसः २२२।।

सानुकंपमिव मल्लिमतल्लीः कंपयन्किमपि चंपकवल्लीः
वापिकांबुकणहारविहारी मारुतः सुखयति स्म रतांते ।।२२३।।

इत्यनंतरसुखान्युपभुंजन्मंजुगुंजदलिपुंजवनेषु ।
भूपतिः सुखयति स्म स पौरान्पूरितार्थिजनमानसवृत्तिः ।।२२४।।

अस्तंगते साहिजलालदीने दोनेक्षणे भूभुवने क्षरणेन
राहुर्ग्रसन्गुर्ज्जरराजचन्द्रान्बहादुरः प्रादुरभूत्स भूयः २२५।।

कैश्चिद्दृष्टविलोचनैरिह यथावत्स्वं नृपं कल्पितं[1]
त्यक्त्वा स्वामिपरिग्रहं पथि वृथा भीमैर्द्रुतं कैश्चन ।
कैश्चिन्मूढवदासितं विलसितं खद्योतवत्कैरपि
श्रीसूर्येण समस्तधर्मधुरमुद्धर्तुं तदा धावितम् ।।२२६।।

आविर्भावविभासितोदयधरा धारेण धावत्तरै
र्वाजीन्द्रैः समुपेत्य लोकनयनालोकं[2] समातन्वता
श्रीसूर्येण तथा बहादुरतमो व्यापादि यद्भूतला
द्दूरीभूय कुलाचलोदरदरीगर्भेष्वपि भ्रश्यति ।।२२७।।

आसीद्दुर्दंडदुष्टप्रदमननिपुणः सर्वतः सार्वभौमः
श्रीमज्जल्लालदीनक्षितिपतितनयः श्रीजहांगीरवीरः ।
सद्यः प्रोत्साद्य शत्रूस्त्वरितमयमुपेत्येह[1] दृष्टः प्रहृष्टः
कोप्यन्यः सूरनाम्नः किमपि कलयति स्वामिधर्मस्य मर्म ।।२२८।।

कैश्चिन्निश्चितमन्यथा कलयितुं कैश्चिच्च दोलायितं
कैश्चिद् भूरि विचारितं सचकितं कैश्चिच्चिरादागतम् ।
अन्यैरेत्य विलज्जितं तदपरैर्न्यक्कारशालायितं
श्रीसूर्य क्षितिपाल तत्रभवता भूयः प्रकाशायितम् ।।२२९।।

वीरः श्रीमन्नुदारे तव मनसि जयोत्साहभाजि प्रकामं
विस्तारं यात्यमुष्मिन्नणवतिवसुधाविंदवन्त्यश्चयोऽपिः
श्रीसूर्यक्षोणिपालोन्नतिभृति तु पुनः प्रांतशलं तिके चित्
शैलाः कैलाशमेरुप्रभृतय इतरे सर्वतः सर्पयंति ।।२३०।।

---

१. वस्त्वन्यपृकिल्पितम्
२. लोकयनालोकन्
१. शत्रूस्त्वरित

श्रुत्वा व्यासमुखात्पुरातनकथाः कौंतेयकर्णादिका
स्तास्ता विस्मयवत्तरा न हि विशश्चासास्मदीयं मनः ।
सत्यासत्ययुगव्यवस्थितिरिति प्रत्येति चित्तं चिराद्
दृष्टे श्रीमति सूरनामनि महाराजाधिराजे त्वयि ।।२३१।।

उद्दामानेकवासः परहितनिरता चारमंता महोक्ति-
र्नित्यं मत्या परीतः कलममृतधरो मानिभिः सेवनीय
मेयः सद्भिर्वरस्त्रीपरिजनरमितो नमगोष्ठोष्वभिज्ञो
वीरः श्री सूरसिंह त्वमिव तव रिपुर्ज्ञायते तत्र मोहः ।।२३२।।

क्षीराब्धिप्रभवा विलासवसतिः पद्मं यदाकण्यते
तत्ते लोचनरूपमेव कलये श्रीसूरसिंह प्रभो ।
लभ्यंते कथमन्यथा करुणया स्यंदत्यमुष्मिन्नितो
रत्नौघा इत उत्कटाः करटिनस्तुंगास्तुरंगा इतः ।।२३३।।

यद्देवासुरकारणाद्विरचितं श्रीसूरसिंह प्रभो
प्राक् तच्चित्रमदर्थमत्रभवता[1] नेत्रीकृतं मंत्रये ।
सूते साधुषु यत्सुधां रसमसत्स्वन्यं कमप्यन्यतो
विभ्रष्टस्मृतयो यतः प्रतिपदं ते विस्खलत्याकुलः ।।२३४।।

वंशप्रशस्तिरिति राजकनाममात्र
मुक्तं तवेह चरितान्यपि कानिचित्प्राक् ।
श्री सूरसिंह ! कलयिष्यसि यान्यतोनु
वक्षंत्यनेककवयश्च वयं च तानि ।।२३५।।

श्रीसूर्यस्य चिरंतनेन जनुषा य चिह्नितः प्रागभूत्
वंशः संप्रति जर्जरः समभवत्कालस्य बाहुल्यतः ।
श्रीसूर्यक्षितिपाल तं नवयितुं नीतावतारस्त्वया
जीर्णोद्धार वदेष यद्विरचितः श्रीसूर्यशः पुनः ।।२३६।।

वारीवारणयूथपैर्भवतु ते दानद्रवैः पंकिला
वाहैर्मेदुरमंदुरोदरभुवश्चंचत्खुरक्षोदिताः
योधैर्निर्जितवैरिवृंदनिकरैर्द्वाश्चत्वाराश्चंचुरा[1]
स्वायत्तीकृतवाग्भिरस्तु कविभिः श्लाघ्या सदा ते सभा ।।२३७।।

---

१. मत्रमत्रभवता

१. छन्दोभङ्ग परिलक्ष्यते

वित्रस्तैणविलोललोचनलसल्लीलावतीभासुरं
श्रीसूर्यक्षितिभृन्मणे सुखयतु त्वामंतरंतः पुरम् ।
प्राप्नोतून्नतिमुत्तरोत्तरशुभैर्वंशः सुपर्वप्रभैः
सत्पुत्रैर्भवतः कुलेऽतिविशदे जातानु बिंबैरिव ॥२३८॥

आसीद्वेदविदावरोतिविशदे या वत्सगोत्रे द्विजः
श्रीमान्दानिगणाग्रणी नरहरिः श्रीमालिनामन्वये
येनानेककरत्नमौक्तिकतुलारूढेण रौक्मीतुलां
काश्चित्स्वात्परिवारतोऽनुभवने दास्योपि संरोपिता ॥२३९॥

तत्पुत्रोपि तथैव लक्ष्मण इति ख्यातस्त्रिपाठी ततो
वैकुण्ठः किल येन विप्रवनिता म्लेच्छौघबंदीकृताः
दत्वा द्रव्यचयानमोक्षत ततः सूनुः सतामग्रणी
संजज्ञे हरनाथ इत्यथ ततो विद्वानभूद्विट्ठलः ॥२४०॥

युक्तिव्यक्तिस्तदनुजनुषा माधवेन व्यधायि[1]
स्फूर्ज्जत्येषा भवतु भुवने सूरसिंहप्रशस्तिः ।
दोषं दूरीकुरुत कवयः सदगुणं धत्त यस्मात्
संत सत्यं किल परगुणग्राहिणस्ते प्रशस्ताः ॥२४१॥

एषा कीर्तिपवित्रितत्रिजगतां राजर्षभानां यशो
वर्णालीकविवक्ष्यणेन विविधालंकारशून्यापि चेत् ।
आदेयोत्तमपूरुषैः कलियुगैनोनाशिनी विश्रुताः
वंद्या पामरकीर्त्तितापि यदिव श्रीरामनामावलिः ॥२४२॥

फुल्लतामरसदामभूषितं श्यामलं किमपि धाम कामये
वामवल्लवकृशोदरीदृशोर्यद्वशीकरणकज्जलीयति ॥२४३॥

इति श्रीसूरसिंहवंशप्रशस्तिः चतुर्थ सर्गः ॥४॥ श्रीमाधवभट्ट
कृतम्।संवत् १७७७ शाके १६४२ रा आश्विनकृष्ण षष्टी रवि··· ············।

---

१. व्यथायित

परिशिष्ट

गवेषणा के नये सोपान : माधवभट्ट के सन्दर्भ में

सूरसिंह वंश प्रशस्ति की भूमिका के कतिपय अंशों का मुद्रण कार्य सम्पन्न हो चुका था। माधवभट्ट के विषय में अन्यान्य प्रमाणों के अभाव में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं हो रही थी। मात्र प्रति के आभ्यन्तर प्रमाण के आधार पर कवि को सूरसिंह-कालीन सिद्ध करने का प्रयास किया गया था। आत्मतुष्टि नहीं हो पा रही थी - हालाँकि सम्पर्कसूत्रान्वेषण अपनी पूरी गति पर था। इस बीच मेरे एक प्रतिष्ठानीय सहयोगी श्री जी० बी० दाधीच के प्रयास से ब्रह्मपुरी (जोधपुर) वास्तव्य श्री भंवरलालजी भट्ट शास्त्री एवं पं० द्वारकादत्तजी द्वारा एतद्विषयक सामग्री सुरक्षित किये जाने का सुराग मिला। तदनुसार प्रतिष्ठान के वरिष्ठ शोध अधिकारी डॉ० डी० बी० क्षीरसागर व मैंने इन दोनों विद्वानों से विस्तृत वार्तालाप कर जानकारी प्राप्त की।

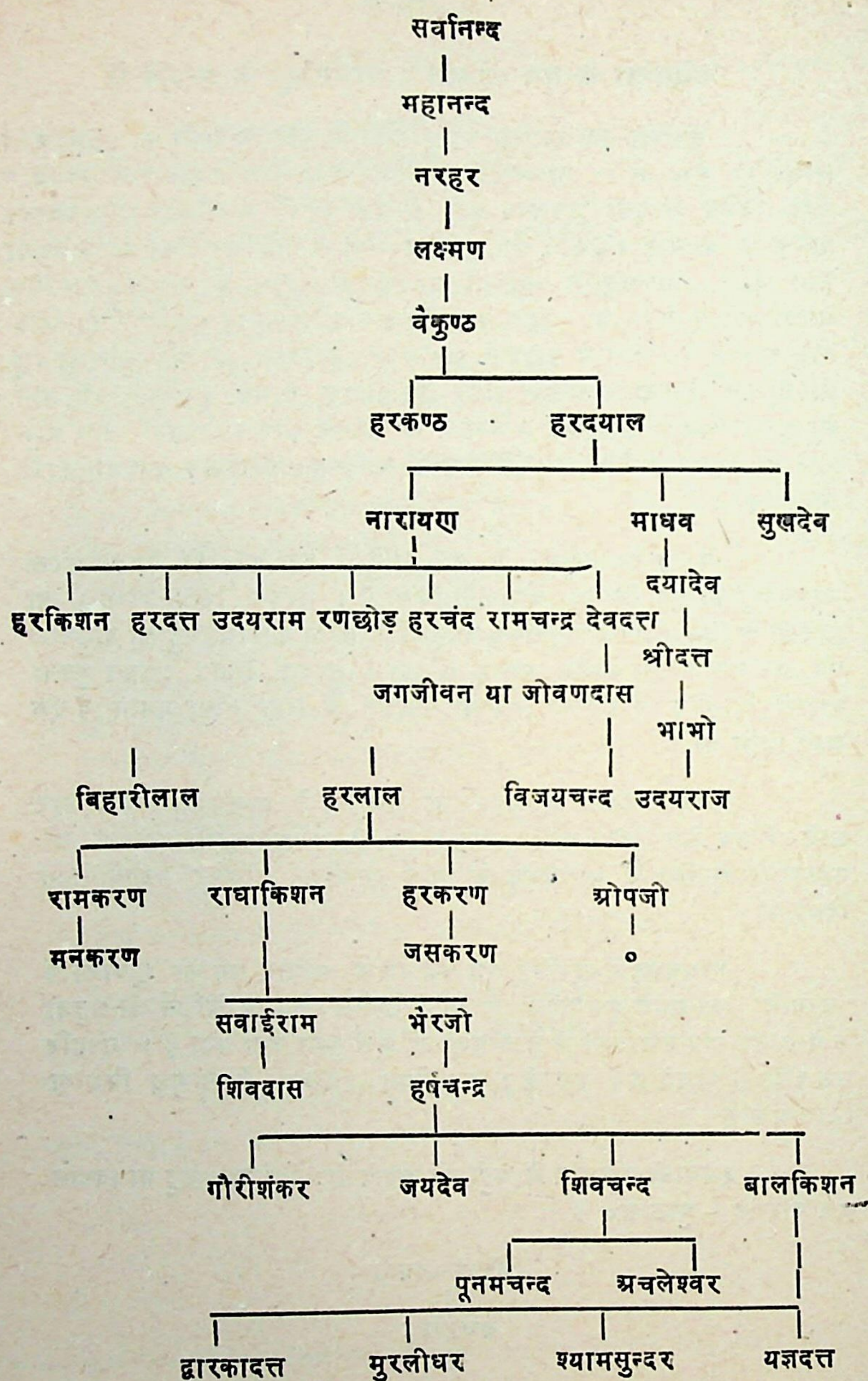
पं० द्वारकादत्तजी के पास अनेकों पट्टों परवानों के अतिरिक्त माधवभट्ट की एक विस्तृत वंशावली मिली है। सम्वत् 1658 ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी के दिन महाराजा सूरसिंह के कुँवर गजसिंह ने माधवभट्ट को रामपोल पर घर बनाने हेतु जमीन प्रदान की थी। सम्वत् 1665 आषाढ़ शुक्ला द्वादशी को गाँव पीपलिया परगना जैतारण में 100 बीघा जमीन व एक अरठ दिया था।

सम्वत् 1667 में महाराजा गजसिंह ने माधवभट्ट को जोधपुर कस्बे में एक खेत दिया था। सम्वत् 1670 फाल्गुनकृष्णा अष्टमी को महाराजा सूरसिंह ने माधवभट्ट को गाँव खोखली जोधपुर परगनान्तर्गत दिया था।

माधवभट्ट ने सूरसिंह वंश प्रशस्ति के अन्तिम सर्ग की पुष्पिका में 'नरहरि" का अपने मूल पूर्वज के रूप में उल्लेख किया है लेकिन श्री भट्टजी के पास उपलब्ध वंशावली में सीवन्तजी को मूल पुरुष कहा गया है। नरहरि उस दृष्टि से पाँचवे क्रम पर है। सम्बन्धित वंशावली में से कुछ विवरण निम्न प्रकार है।

(मेवाडी आम्नाय में भट्टों की वंशावली; विशेषतः भट्ट माधवदास वंश परिचय – पृष्ठ सं० 1

त्रिवेदी सीवन्त
|
बच्छराज
|


सर्वानन्द
महानन्द
नरहर
लक्ष्मण
वैकुण्ठ
हरकण्ठ
हरदयाल
नारायण
माधव
सुखदेव
दयादेव
हरकिशन
हरदत्त
उदयराम
रणछोड़
हरचंद
रामचन्द्र
देवदत्त
श्रीदत्त
जगजीवन या जीवणदास
भाभो
बिहारीलाल
हरलाल
विजयचन्द
उदयराज
रामकरण
राधाकिशन
हरकरण
ओपजी
मनकरण
जसकरण
सवाईराम
भैरजी
शिवदास
हर्षचन्द्र
गौरीशंकर
जयदेव
शिवचन्द
बालकिशन
पूनमचन्द
अचलेश्वर
द्वारकादत्त
मुरलीधर
श्यामसुन्दर
यज्ञदत्त

प्रशस्तिकार के विवरण में हरनाथ (हरदयाल) के पुत्र विट्ठल का विवरण है जो माधवभट्ट के अग्रज थे किन्तु भट्टजी द्वारा प्रदत्त वंशावली में इसका विवरण उपलब्ध नहीं है।

माधव भट्ट व उसके परिवार के बारे में हमें "चिमनी-चरितम्"[1] नामक काव्य से काफी जानकारी मिलती है। इस काव्य का प्रणयन नीलकण्ठ शुक्ल द्वारा 1656 ई० में किया गया था। तदनुसार माधव भट्ट ने अपने सुपुत्र दयादेव एवं अपने चाचा के पुत्र सुखदेव को संस्कृतवाङ्मय की शिक्षा देकर विद्वान् बनाया। उचित अवसर देखकर इन दोनों युवकों को मुगल राजदरबार में बड़े-बड़े अधिकारियों से परिचित करवाया। कालान्तर में बादशाह के आलामुसाहिब अल्लावर्दीखान के यहाँ शहजादियों के अध्यापनार्थ इन्हें रख लिया गया। एक दिन खानखाना की पुत्रवधू महल के झरोखे से दयादेव को देखकर उस पर मोहित हो जाती है। नाजरनीश के माध्यम से दयादेव एवं चिमनी का मिलन प्रणय में परिवर्तित हो जाता है। दयादेव राजभय से भागना चाहता है लेकिन चिमनी के निश्छल प्रेम एवं भवितव्यतावश किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो नतमस्तक हो जाता है।

चिमनी व दयादेव के इस अनन्य प्रेम का अन्तिम परिणाम कवि ने प्रकट नहीं किया है। एतदर्थ हमें भट्ट हरिवंश-प्रणीत "भीमप्रबन्ध" महाकाव्य से काफी जानकारी मिलती है। भीमप्रबन्ध के अष्टादशसर्ग में "चिमनी चरितम्"[2] के नेता दयादेव एवं नायिका चिमनी का उल्लेख है। प्राप्त ज्ञातव्यानुसार, यह प्रणयगाथा धीरे-धीरे बादशाह के कानों तक पहुँच गई। दयादेव तथा उसके चाचा के लड़के को जिन्दा दीवार में चुनने की आज्ञा दी गई। दयादेव की माता अपने पुत्र के वियोग में महासती हो गई।

---

(१) चिमनी चरितम्—देवभाषा प्रकाशनम्, दारागंज प्रयाग. संवत 2033; एन. सी. सी. वो. 10, पृ० 177, वो. 7, पृ० 65

(2) अलेहवृद्धः हि सुतं महान्तं या ज्येष्ठबन्धोः दुहिता च तस्य ।
उद्वाहिता सा चिमनी गवाक्षे दैवाद् दयादेवमपश्यदेषा ।।६४।।
विप्रो दयादेव हि काममूर्त्ति भाषासु काव्येषु बुधाग्रणी च ।
तं खाननामानमुपेत्य वृत्तिमन्तःपुरस्त्री पठने चकार ।६५।।
स पाठयन् वै चिमनीपुरोगाः मुमोह विप्रो स्मरबाणभिन्नो ।
क्लीबोऽपि तासां पठने नियुक्तस्ता एव तत्प्रेमवशा बभूवुः ।।६६।।
सा मोहिता वै चिमनी द्विजाय ददौ हि मुक्ताः गुरवे चतस्रः ।
विज्ञाय म्लेच्छाधिपतिश्चरित्रं सभ्रातरं भितिममुं निनाय ।।६७।।
यो माधवो वै जनकस्तदीयः पितृव्यपुत्रस्य सुतस्य वार्ताम् ।
श्रुत्वा समादाय स मौक्तिकानि स्वदेशमागत्य तुलाञ्चकार ।।६८।।
[भीमप्रबन्ध महाकाव्यम्. सर्ग 18]

इस दुखान्तिका से अवगत होने के बाद माधवभट्ट ने जोधपुर आकर चिमनीप्रदत्त चार मोतिय के यों विक्रय से प्राप्त धन से तुलादान व महारुद्रयज्ञ सम्पन्न किया। इस अवसर पर माधवेश्वर मन्दिर का भी निर्माण करवाया।

जोधपुर नगर के ब्रह्मपुरी-स्थित भट्टों के बास में आज भी माधवभट्ट का मकान, तुलादान का चबूतरा एवं पास ही माधवेश्वर का मन्दिर अपने दारुण इतिहास को समेटे, सजीव की तरह, मानवीय प्रेम और शाश्वत मूल्यों के लिये, शताब्दियों से निरन्तर चल रहे अनन्त संघर्ष में, धर्म और जाति से परे मनुष्य-मनुष्य की सनातन एकता के दिव्य-संदेश के रूप में प्रत्येक सहृदय को प्रेरित करते रहेंगे।